करपात्री - स्वामी

एक जीवन दर्शन

राधेश्याम खेमका

॥ श्रीहरिः॥

करपात्री-स्वामी

एक जीवन दर्शन

श्री अद्भुरनाथ पाल को
सस्नेह —
राधेश्याम खेमका

राधेश्याम खेमका

श्रीसीताराम सेवा ट्रस्ट, वाराणसी

॥ श्रीहरिः ॥

भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसङ्गो
भूयादनन्त महताममलाशयानाम्।
येनाञ्जसोल्बणमुरुव्यसनं भवाब्धिं
नेष्ये भवद्गुणकथामृतपानमत्तः ॥

(भागवत)

"हे अनन्त! आपमें निरन्तर भक्तिभाव धारण करनेवाले अमलान्तरात्मा संतोंकी सन्निधि मुझे प्राप्त हो। जिस सत्सङ्गतिसे प्राप्त होनेवाली आपकी गुणकथारूपी सुधाका पान करके भगवद्भावमें निमग्न होकर मैं बिना प्रयास के ही अतीव दारुण और अनादिकाल से प्रवृत्त जन्म-मरणरूप क्लेशसे परिपूर्ण संसारसागर को पार कर जाऊँगा।"

माघ शुक्ल पञ्चमी, संवत् २०६५

प्रकाशक

श्रीसीताराम सेवा ट्रस्ट

के० ६२/९३, कर्णघंटा, वाराणसी-२२१ ००१

प्राप्ति स्थान

श्री काशी विश्वनाथ व्यक्तिगत मन्दिर

मीरघाट, वाराणसी

मूल्य : बीस रुपये

॥ श्रीहरिः ॥

'वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्'

'करपात्र स्वामी'—कर ही है पात्र जिनका—ऐसे स्वामी हरिहरानन्द सरस्वती ने संसार में 'करपात्रीजी' के नामसे प्रसिद्धि प्राप्त की। वे एक युग पुरुष थे। इतिहास साक्षी है कि भारत की इस पवित्र भूमि ने समय-समय पर ऐसे संत-महात्माओं और आचार्यों को जन्म दिया, जिनके जीवन से भारतीय संस्कृति तथा सनातन धर्मको प्रकाश तो मिला ही, साथ ही सुरक्षा भी मिली, आदिशङ्कराचार्य, रामानुजाचार्य, रामानन्दाचार्य, निम्बार्काचार्य तथा श्रीवल्लभाचार्य आदि का अवतरण इस देश को इसी रूप में प्राप्त हुआ। इसी कड़ी में आदिशङ्कराचार्य की परम्परा में अनन्तश्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज भी अवतरित हुए, जिनमें अलौकिक प्रतिभा थी और तपस्या एवं साधना का अमित तेज था। कलिके इस प्रथम चरण में जीवनपर्यन्त वर्णाश्रमव्यवस्था और धर्म की रक्षा के लिये वे संघर्षरत तो रहे ही, साथ ही उन्होंने जगत्को वेद-शास्त्र और धर्म के सूक्ष्म तत्त्वों से अवगत भी कराया।

उन्हीं प्रातःस्मरणीय स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराजके अन्तरङ्ग क्षणों की स्मृति से स्वयं को कृतार्थ करने के लिये यह संस्मरणरूपी श्रद्धामयी भावप्रसूनाञ्जलि उन महामनीषी के श्रीचरणों में समर्पित है।

राधेश्याम खेमका

प्रस्तावना

अन्धकार में पड़ी हुई मानव-जाति को प्रकाश में लाने के लिये संतवचन अथवा उनके द्वारा प्रदर्शित मार्ग कभी न बुझने वाली अमोघ दिव्य ज्योति है। दु:ख-संकट और पाप-ताप से प्रताड़ित प्राणियों के लिए संतों के संस्मरण सुख-शान्ति के गम्भीर और अगाध-समुद्र हैं। मानवता में आयी हुई दानवता का दलन करके मानव को मानव ही नहीं, **महामानव** बनाने हेतु संतों के विचार दैवीशक्ति-सम्पन्न संचालक और आचार्य होते हैं। किंबहुना, विषयाशक्ति और भोग-कामना के परिणाम स्वरूप नित्य निरन्तर अशान्ति की अग्नि में जलते हुए जीवों को विशुद्ध भगवदनुरागी और भगवत्कामी बनाकर उन्हें भगवत्-मिलन के लिये नियुक्त कर प्रेमानन्द रस-सुधा-सागर सच्चिदानन्द विग्रह परमानन्दघन विश्वमोहन भगवान् की अनन्त सौन्दर्य माधुर्यमयी परम मधुरतम मुखच्छवि का दर्शन कराने हेतु संतों के संस्मरण अथवा उनके विचार भगवान् के नित्यसंगी प्रेमी पार्षद हैं।

संतों के चरित्र कीर्तन अथवा संत-वाणी से क्या नहीं हो सकता? संत-वाणी, मानव हृदय को तमोऽभिभूत, अवनत और पतित परिस्थिति से उठाकर अनायास ही अत्यन्त समुन्नत और समुज्ज्वल कर देती है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी। संत-वाणी से अज्ञान तिमिराच्छन्न अन्तस्तल, भगवान् भास्कर की प्रबलतम किरणों से छिन्न-भिन्न होकर प्रणष्ट हुए मेघ समूह के सदृश अज्ञानतिमिर के आच्छादन से मुक्त होकर विशुद्ध अद्वय-भास्कर के प्रकाश से आलोकित हो उठता है और नित्य-निरंतर विषय-मल-मलिन निम्न प्रदेश में प्रवाहित विष-दुर्गन्ध-दूषित चित्तवृत्ति-सरिता, दिव्य प्रेमामृत प्रवाहिनी मधुर मन्दाकिनी के स्वरूप में परिणत होकर सुषमा-सौगन्ध्यवती और अविराम प्रवाह प्रतिज्ञाशीला बनी हुई सदा सर्वदा परम विशुद्ध प्रेमघन **श्रीनन्दनन्दन** के पावन पादपद्मों का प्रक्षालन करने के लिये उन्हीं की ओर प्रवाहित होने लगती है।

परमात्मा को प्राप्त ऐसे संत स्वयं ही कृतार्थ नहीं होते, वे संसार सागर में डूबते-उतराते हुए असंख्य प्राणियों का उद्धार करके उन्हें परमात्मा के परम धाम में पहुँचाने के लिये सुदृढ़ जहाज बन जाते हैं। उनका संग करके उनके वचानुसार आचरण करने पर उद्धार होता है, इसमें तो आश्चर्य ही क्या है? उनके स्मरण मात्र से, स्मरण करने वाले का मन ही नहीं, उनका घर तक विशुद्ध हो जाता है। महाराज परीक्षित, मुनिवर शुकदेवजी से कहते हैं—

येषां संस्मरणात् पुंसां सद्यः शुध्यन्ति वै गृहाः।
किं पुनर्दर्शनस्पर्शपादशौचासनादिभिः॥

(श्रीमद्भागवत्)

ऐसे साधनसिद्ध संतों के अतिरिक्त परमात्मा जीवों के प्रति दयापरवश होकर कभी-कभी उच्चकोटि के संतों को, संसार के उन दुःखी जीवों का उद्धार करने के लिये अवतरित कर दिया करते हैं। वे महापुरुष त्रितापानल से जले हुए जीवों को उपदेश देकर उनके समक्ष परम विशुद्ध आदर्श उपस्थित कर और उनकी यथा योग्य सेवा कर उनके हृदयों में परमात्मास्वरूप को जानने की जिज्ञासा और परमात्मा को प्राप्त करने की शुभाकांक्षा उत्पन्न कर देते हैं।

उपर्युक्त प्रवृत्ति के अनुसार बीसवीं शती के संक्रमण काल में धरा पर अवतरित महान् संत विश्ववन्द्य, धर्मसम्राट, श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य, परमवीतराग, यतिचक्रचूडामणि, अनन्त श्रीविभूषित, **दण्डी संन्यासी, श्रीहरिहरानन्द सरस्वती स्वामी श्रीकरपात्री जी महाराज हैं।** प्रश्न चाहे वर्णाश्रम मर्यादा संरक्षण का हो, या सनातन शाश्वत धर्म के सत्य सिद्धान्तों के संस्थापन का हो, वैदिक संस्कृति के प्रचार प्रसार में उन्होंने अपना **सर्वस्व** लगा दिया। पराधीन भारत में, जन-जन में राजनैतिक चेतना जाग्रत् करने का कार्य तो अनेक कर्मनिष्ठ नेताओं ने किया, किन्तु विपरीत गति, कलुषित वातावरण एवं अल्पसहयोग में धर्म, संस्कृति, वेद, शास्त्र, मन्दिर, गौ, ब्राह्मण, यज्ञ एवं आस्तिकवाद के रक्षार्थ जन-साधारण में व्यापक प्रचार करने के गुरुतर कार्य का सम्पादन यदि किसी ने किया है तो वे हैं एक मात्र शिवावतार श्री स्वामी करपात्रीजी महाराज। किं बहुना जिसे अनादि

अपौरुषेय वेदों का दर्शन करना हों जिसे वेदादि सत्शास्त्रों एवं पुराण, स्मृति आदि का मूर्त रूप देखना हो तो उसे एक ही व्यक्ति में दर्शन हो सकते हैं, और वे हैं **श्री स्वामी करपात्री जी महाराज**।

ऐसे महिमामण्डित महापुरुष का चरित्र चिन्तन, विचार दर्शन एवं क्रिया कलापों का अध्ययन वही कर सकता है जो, वेदों का मर्मज्ञ हो, धर्म, राजनीति, दर्शन, समाजवाद, शिक्षा, संस्कृति, सभ्यता आदि का परमनिष्णात ही नहीं उनका परमज्ञाता हो।

वर्तमान समय में शास्त्रों-वेदों के मूर्तरूप एकमात्र श्री करपात्र स्वामीपाद ही थे। महाराज श्री चरणों की स्मरण शक्ति, नितांत तीव्र थी, उन्हें विस्मरण कदापि नहीं होता था। वेद शास्त्रानुकूल कल्पना का तो अखण्ड भण्डार ही थे। वे तो अमोघ-दिव्य ज्योतिरूप थे। काम-क्रोधादि षट् शत्रु तो उनके समीप भी फटक नहीं पाते थे। श्री करपात्रस्वामी चरणों के सानिध्य में रहने का सौभाग्य जिन्हें प्राप्त हुआ, वे ही उनके सच्चिदानन्द स्वरूप का दर्शन कर पाये। श्री स्वामी चरणों के मुखारविन्द से जिन्हें श्रीमद्भागवत प्रवचन के श्रवण का अवसर प्राप्त हुआ, वे वस्तुतः राजा परीक्षित के समान ही श्रवणभक्ति के अधिकारी हुए।

महाराजश्री की अध्यापनकला भी अनुपम ही थी। जब शास्त्रीय विषय का उपपादन करते थे, तो शिष्यजनों के चित्त में वह उपपादन, स्थिररूप से सर्वदा के लिये स्थान प्राप्त कर लेता था, जो भुलाने से भी भूलता नहीं था।

यद्यपि आज महाराजश्री के पार्थिव शरीर का दर्शन करना जनसाधारण को दुर्लभ हो गया है, तथापि उनके श्रद्धालु शिष्य भक्तजनों को स्वप्नावस्था में आज भी दर्शन सतत होते रहते हैं। श्री चरणों की मूर्ति तो भक्त शिष्यों के नेत्रों की कनीनिका की चौखट में सदा-सर्वदा के लिये जड़ी हुई है। महाराजश्री के मुखारविन्द से निर्गत शब्द की ध्वनि आज भी शिष्यजनों के कर्णविवरों में गूँजती रहती है। आज भी यदा-कदा शास्त्रीय ग्रन्थों के आध्यापन के समय यदि दुर्दैवशात् सन्देह हो जाता है, तो स्वप्न में महाराजश्री की वाणी में उत्तर मिल जाता है, और सन्देह तत्काल नष्ट हो जाता है।

ऐसे सद्गुरुचरण, सर्वसाधारण को प्राप्त होना दुर्लभ है। अनेक जन्म-जन्मान्तर के पुण्य पुञ्ज के प्रभाव से ही ऐसे गुरुचरण प्राप्त होते हैं। उनके स्नेह परिप्लुत कृपा के पात्र हम शिष्यजनों को उनकी प्राप्ति होना, हम अपना अत्यन्त सौभाग्य समझते हैं। अतः उन गुरुचरणों की जय-जयकार का उद्घोष करते रहना ही हमारी कृतज्ञता प्रकट करना है, अन्य कोई उपाय नहीं। हम तो महाराजश्री के सदा-सर्वदा ही कृपापात्र हैं।

हमारे श्री गुरुचरण स्वामी करपात्रीजी महाराज की जय हो-जय हो-जय हो।

उनकी चतुःसूत्री

१. धर्म की जय हो, २. अधर्म का नाश हो, ३. प्राणियों में सद्भावना हो, ४. विश्व का कल्याण हो।

"हर-हर महादेव"

अन्त में एक तथ्य का उद्घाटन करना हम लोगों का कर्तव्य है कि महाराज श्रीचरणों के भक्तों में से ही अन्यतम अनन्य भक्त, **स्वनामधन्य श्री राधेश्यामजी खेमका हैं,** जो **महाराज श्रीकरपात्री जी का** 'एक संस्मरण' लिपिबद्ध कर लोक कल्याणार्थ प्रकाशित कर रहे हैं। इस उपलक्ष्य में श्री खेमकाजी को मैं हार्दिक अनेकानेक धन्यवाद देते हुए उनके प्रति शुभकामना प्रकट करता हूँ। वे इसी प्रकार लोक कल्याण कामना से अनेकानेक शुभकार्य करते रहेंगे, यह विश्वास मुझे हो रहा है। **यही आशीर्वाद सदा सर्वदा, उनके साथ रहेगा। इति शम्**

महामहोपाध्याय श्री गजानन शास्त्री मुसलगाँवकर
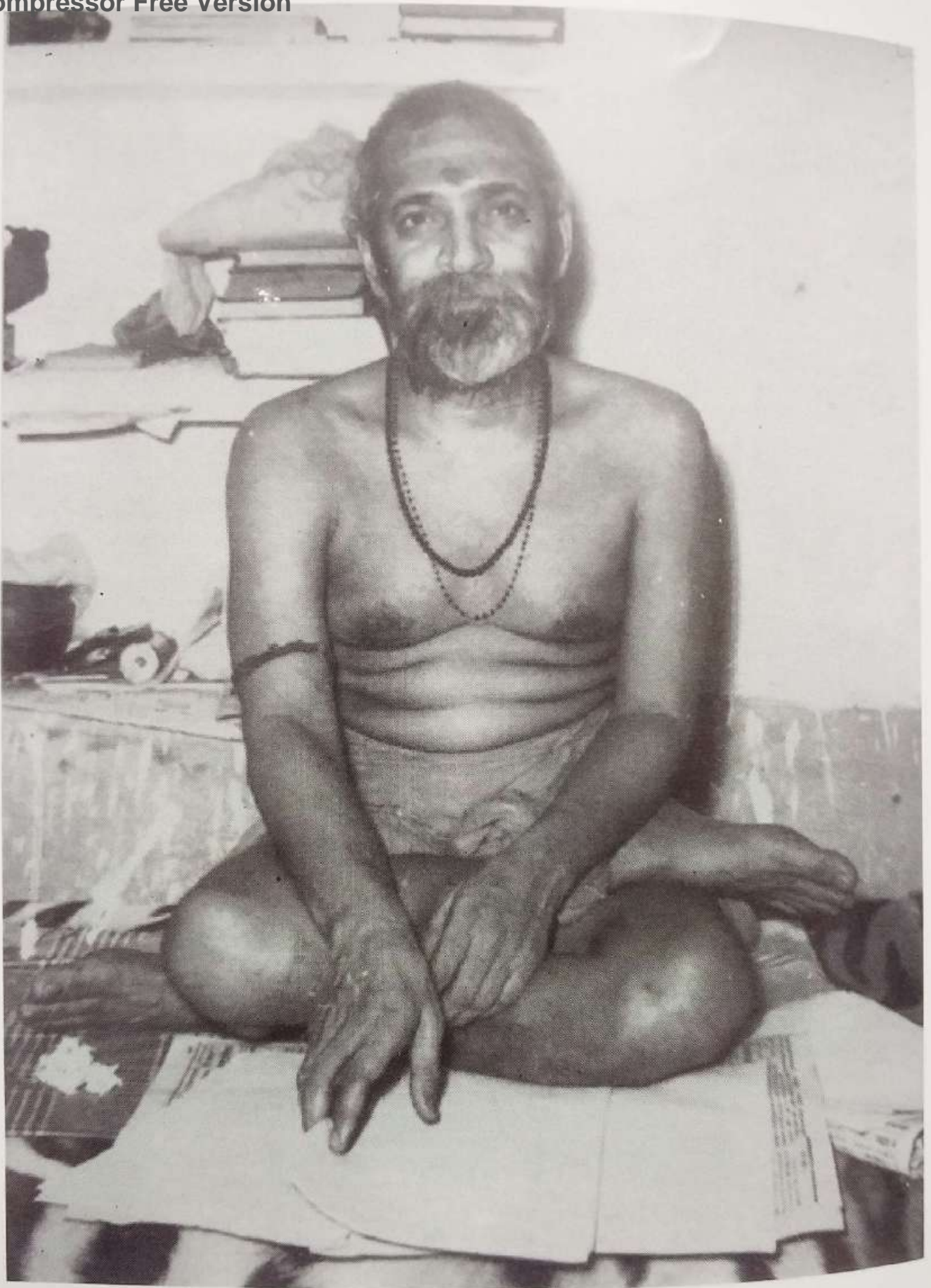
साम्यावस्था में—करपात्री-स्वामी

साम्यावस्था में—करपात्री-स्वामी

अनन्तश्री स्वामी करपात्रीजी महाराज

एक संस्मरण

हमारे शास्त्र कहते हैं कि किसीके जीवनमें कोई संत या महापुरुष एक क्षणके लिये भी आ जायँ तो यह भगवान्की विशेष कृपाका फल है। संतका सांनिध्य मानव-जीवनको ऊपर उठाता है अर्थात् सत्संगतिसे उसकी आध्यात्मिक उन्नति होती है और इसके साथ ही यदि मानव-जीवनका वास्तविक लक्ष्य मनमें दृढ़तापूर्वक निर्धारित हो जाय तो भगवत्प्राप्ति भी हो सकती है।

२०वीं शताब्दीमें अनन्तश्री स्वामी करपात्रीजी महाराज एक महान् संत, आचार्य, भगवद्भक्त और युगपुरुषके रूपमें अवतरित हुए। उनकी संनिकटता जिन थोड़े लोगोंको प्राप्त हुई, उनमें भी अधिकतर लोग तो केवल बाह्य स्वरूपसे ही परिचित हो सके; क्योंकि उनकी जन्मजात साधुताके आन्तरिक परिवेशमें सबका प्रवेश होना कठिन भी था। तथापि क्षणमात्रके लिये भी उनका सांनिध्य जिसे प्राप्त हुआ, वह कल्याणका भागी बना। भगवत्कृपासे मुझे भी अपने जीवनके कुछ क्षणोंमें उनकी स्नेहयुक्त संनिधि प्राप्त हुई। जिसमें उनकी कृपा, प्रेम, सत्संग और साहचर्य प्राप्त करनेका अवसर प्राप्त हुआ। उनकी संनिकटतामें जो कुछ अनुभूति मुझे मिली, उसका यत्किंचित् अंश यहाँ संस्मरणके रूपमें प्रस्तुत किया जा रहा है, जिससे उनके साधुतापूर्ण मनोभावोंकी झलक, दैनिक दिनचर्या और जीवन-यापनकी व्यावहारिकताका दिग्दर्शन पाठकोंको हो सकेगा, साथ ही भगवद्भक्त साधकोंके लिये यह प्रेरणाका स्रोत भी बनेगा।

कर्म, भक्ति और ज्ञानका त्रिवेणी-संगम

महाराजश्रीका जीवन कर्म, ज्ञान और भक्ति—इन तीनोंकी त्रिवेणीका एक संगम था। यद्यपि वे ज्ञानयोगी थे, परंतु उनके कार्यक्रमोंको देखनेसे ऐसा लगता था कि वे किसी कर्मयोगीसे कम नहीं हैं। इसी प्रकार भक्ति

भी उनकी इतनी प्रगाढ़ थी, जिसकी तुलना किसी सामान्य भक्तसे नहीं की जा सकती।

त्याग-वैराग्यकी प्रतिमूर्ति

वैसे तो महाराजश्री जन्मजात स्वभावसे ही साधु थे, पर अपने जीवनमें उन्होंने गृहस्थीसे लेकर विरक्तितक जितना कार्य सम्पन्न किया, उतना कार्य अन्य कोई शायद ही कर सके। जीवनके पूर्वार्धमें उनके तीव्र त्याग और तपस्याकी प्रशस्ति तो सर्वविदित ही है। ऐसा लगता है कि महाराजश्री पूर्वजन्मके साधु थे। जन्मसे ही उनमें साधुताके बीज अंकुरित हो चुके थे। एक बार महाराजश्रीने स्वयं बताया कि बाल्यावस्थामें जब वे किसी संत-महात्मा या साधुको देखते तो उनमें उनका स्वाभाविक आकर्षण होता। उनकी यही इच्छा होती कि वे भी उनके साथ हो जायँ। कई बार तो वे साधुओंके साथ जाने भी लगते, परंतु परिवारके लोग उन्हें वापस पकड़कर ले आते। उनके पिताजीने जब यह अनुभव किया कि इनका मन घर-गृहस्थीमें नहीं लगता तो उन्होंने कम अवस्थामें ही इनका विवाह-संस्कार कर दिया। उन्हें आशा थी कि विवाह होनेके बाद सामान्यरूपसे घर-गृहस्थीके कार्योंमें ये आसक्त हो जायँगे, पर विधिकी विडम्बना तो कुछ और ही थी। विवाह हो जाने तथा पत्नीके आ जानेपर भी वे घर-गृहस्थीके प्रति स्वाभाविकरूपसे उदासीन एवं अनासक्त थे। साधु-संतोंमें ही उनका मन रमा था। संसारके प्रति विरक्त-भाव था। पिताने यह सब ताड़ लिया। उन्हें यह निश्चय होने लगा कि अब ये अधिक दिनोंतक घरमें नहीं टिकेंगे। पिताकी यह इच्छा थी कि कम-से-कम एक संतान हो जाय। पिताकी इच्छा पूरी हुई। एक कन्याका जन्म हुआ। तदनन्तर कुछ ही दिनों बाद, घरसे निकल पड़े। पारिवारिक जनोंने इनको पुनः लौटानेका बहुत प्रयत्न किया, पर वे संसारकी नश्वरतासे परिचित थे, उत्कट वैराग्य जाग्रत् हो चुका था। अतः परमार्थ-पथसे लौटकर पुनः घर आना उन्हें स्वीकार्य नहीं था।

कुछ ही दिनों बाद तत्कालीन ज्योतिष्पीठाधीश्वर शंकराचार्य स्वामी श्रीब्रह्मानन्दजी सरस्वतीसे उनकी अकस्मात् मुलाकात हो गयी। उन्होंने इस युवककी प्रतिभाको पहचाना और इस युवकको कुछ समय विद्योपार्जनके लिये प्रेरणा की। अलवरमें नर्मदाके तटपर स्वामी श्रीविश्वेश्वरानन्दजी महाराजश्रीके विद्यागुरु थे। वहाँ महाराजने अल्प समयमें ही (लगभग दो वर्षोंमें) व्याकरण, न्याय, सांख्य और वेदान्तकी शिक्षा ग्रहण की तथा साथ ही प्रस्थानत्रयी आदि विषयोंमें वे पूर्ण निष्णात हो गये। महाराजश्रीकी प्रतिभा इतनी प्रखर थी कि जिस विषयको वे एकबार देखते, वह विषय उन्हें अनायास ही आत्मसात् हो जाता। संसारके प्रति उनका पूर्ण वैराग्यभाव था ही। वे बहुत वर्षोंतक उत्तराखण्डमें ऋषिकेशकी झाड़ियोंमें विचरण करते रहे। ऋषिकेशमें कोयलघाटी नामक स्थान है, जहाँ एक पुरातन वट-वृक्ष आज भी स्थित है। उस वृक्षके कोटरमें एक व्यक्तिके रहने योग्य अवकाश है, जिसमें महाराजश्री विश्राम किया करते थे। उन दिनों लँगोटीके अतिरिक्त महाराजश्रीके पास कोई वस्त्र भी नहीं रहता था। तीन दिन अथवा सात दिनपर दूधकी भिक्षा कर (हाथ)-से ही ग्रहण करते, इसीलिये आगे चलकर उनकी प्रसिद्धि 'करपात्रस्वामी'के नामसे हुई। उस समय स्वामीजी किसी प्रकारके यान या सवारीपर नहीं चढ़ते। पैदल ही यात्रा करते।

मालवीयजीसे शास्त्रार्थ

जिन दिनों महाराजश्री ऋषिकेशमें रहते थे, उन दिनों वे प्रकाशमें तब आये, जब महामना मदनमोहन मालवीयजीसे उनका शास्त्रार्थ हुआ। यद्यपि श्रीमालवीयजी सनातनधर्मी नेता थे, परंतु समय और परिस्थितियोंके अनुसार स्त्री और शूद्रको भी प्रणवकी दीक्षा देनेका समर्थन करते थे और इसे शास्त्र-सम्मत भी बताते थे। उन्होंने इस विषयपर शास्त्रार्थकी भी घोषणा कर दी। कुछ लोग जो महाराजश्रीसे परिचित थे, वे उनसे मिले और प्रार्थना करने लगे कि महाराजजी आप-जैसे विद्वान्‌के रहते, इस प्रकारकी चुनौतीका मुकाबला होना ही चाहिये तथा इस विषयमें शास्त्र-सम्मत निर्णय होना चाहिये। शास्त्रविपरीत कोई भी बात महाराजश्रीको सहन नहीं थी। उस समय महाराजने कोई उत्तर नहीं दिया। शास्त्रार्थके लिये एक विशिष्ट मंचका निर्माण किया गया था, जहाँ माइक-लाउडस्पीकर आदि सब लगे थे। उस क्षेत्रके विशिष्ट लोग शास्त्रार्थमें आमन्त्रित थे। श्रीमालवीयजी अपनी बातके

पक्षमें तर्क-युक्ति और शास्त्रीय प्रमाण अपने भाषणमें मंचपर प्रस्तुत कर रहे थे।

मंचसे थोड़ी ही दूरपर एक वृक्षके नीचे लँगोटी बाँधे एक युवक साधु खड़ा होकर मालवीयजीके तर्क-युक्ति और प्रमाणोंका उत्तर देने लगा। धीरे-धीरे कुछ श्रोता भी वहाँ जुट गये। थोड़ी ही देरमें यह बात बिजलीकी तरह फैल गयी कि एक प्रतिभावान् फक्कड़ साधु एक पेड़के नीचे खड़ा होकर मालवीयजीकी बातोंका उत्तर दे रहा है। संत-महात्मा और विशिष्ट जन वहाँ पहुँचने लगे। मंचपर आसीन लोग भी उस महात्माका उत्तर सुननेको आतुर हो गये। यह बात श्रीमालवीयजीके कानोंमें पहुँची और लोगोंने उनसे यह आग्रह किया कि साधुको यहाँ मंचपर लाया जाय। कुछ लोगोंने महाराजश्रीको पहचाना। मालवीयजी स्वयं वृक्षके नीचे पधारे और महाराजश्रीसे मंचपर चलनेका आग्रह किया। तत्काल महाराजने शास्त्रार्थकी चुनौती स्वीकार कर ली और मंचपर मालवीयजीसे शास्त्रार्थ होना निश्चित हो गया। सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका तथा सेठ श्रीगौरीशंकरजी गोयन्दका मध्यस्थ बनाये गये। तीन दिनोंतक शास्त्रार्थ भी चला। मध्यस्थोंने यह निर्णय दिया कि शास्त्र-सम्मत पक्ष महाराजश्रीका ही है। देश-काल-परिस्थितिके अनुसार मालवीयजी अपनी बात कहते हैं। इसी समय सर्वप्रथम सर्वसाधारणको महाराजश्रीका परिचय मिला और महाराज जनता-जनार्दनके प्रकाशमें आ गये।

वृन्दावन-निवास

तदनन्तर कुछ दिनों महाराजने वृन्दावनमें निवास किया। वहाँ उन्होंने निराहार रहकर स्वान्त:सुखाय श्रीमद्भागवत-सप्ताह-पाठ किया। उन दिनों सप्ताहमें एक बार कर (हाथ)-द्वारा वे दूधकी भिक्षा करते, पुनः दूसरा सप्ताह-पाठ प्रारम्भ कर देते। इस प्रकार कितने ही दिनोंतक उनका यह कार्यक्रम चलता रहा। वृन्दावनमें स्वामीजी महाराज उड़िया बाबाके सम्पर्कमें भी आये। उड़िया बाबाके आश्रममें संतों और महात्माओंका जमघट लगा रहता। देशके अच्छे-अच्छे संत और महात्माओं-को उस आश्रममें आश्रय मिलता। एक बार महाराजश्रीने किसी संदर्भमें मुझसे कहा कि उड़िया

बाबामें मेरा गुरुभाव था। इस प्रकार महाराजश्रीकी उनमें विशेष श्रद्धा थी, परंतु आगे चलकर कुछ सैद्धान्तिक बातोंमें उनसे महाराजका मतभेद भी हो गया था।

यौगिक साधना

एक बार किसी प्रसंगमें महाराजने मुझसे बताया कि वे भीषण जाड़ेके समय पौष मासके महीनेमें निर्वस्त्र होकर केवल एक लँगोटी धारणकर अर्धरात्रिमें अपनी साधनामें बैठ जाते हैं और रात्रिपर्यन्त साधनामें लगे रहते हैं। इसके अतिरिक्त विविध प्रकारकी यौगिक क्रियाएँ भी महाराजने सम्पन्न कीं। खेचरी आदि यौगिक क्रियाएँ, जिनमें जिह्वा काटनेकी प्रक्रिया एवं इन्द्रियद्वारा पारा खींचनेकी भी प्रक्रिया होती है—ये सब महाराजने कीं। मैंने एक बार महाराजजीसे पूछा—महाराज, यह सब आपने क्यों किया? महाराजने उत्तर दिया—कौतूहलवश हमने यह सब करके देखा कि आखिर इन सबमें क्या तत्त्व है। इस प्रकार महाराजश्रीने प्रायः सम्पूर्ण यौगिक क्रियाएँ तथा हठयोगकी साधनाएं भी पूरी कीं।

जिन लोगोंने उनके त्याग और वैराग्यका दर्शन किया, उसके सम्बन्धमें जब हम उनसे सुनते हैं तो आश्चर्यचकित हो जाते हैं।

महाराजश्रीके द्वारा दण्ड-ग्रहण

वास्तवमें महाराजने प्रारम्भमें विद्वत्-संन्यास लिया था। अबतक उन्होंने दण्ड ग्रहण नहीं किया था। स्वाभाविक रूपसे वैराग्य होनेके कारण एक विरक्त संन्यासीके रूपमें वे विचरते थे। बादमें विद्वानोंकी सभामें इस विषयमें विचार-विमर्श किया गया और यह निर्णय हुआ कि शास्त्रानुसार संन्यास ग्रहण करनेके लिये दण्ड आदि धारणकर लिङ्ग-संन्यास लेना चाहिये। तत्पश्चात् महाराजने तत्कालीन ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वतीजीसे दण्ड ग्रहण किया। ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी ब्रह्मानन्दजी भी करपात्रस्वामी-जैसे योग्य शिष्यको पाकर कृतकृत्य हो गये। उन्होंने यह निर्णय लिया कि मेरे बाद उत्तराम्नाय ज्योतिष्पीठ-शंकराचार्यके पदपर स्वामी करपात्रीजीको ही अभिषिक्त किया जायगा। उन्होंने एक

वसीयत भी स्वामीजीके नामसे बनायी, परंतु महाराजश्रीने इस पदको स्वीकार करना उचित नहीं समझा। कारण, उनका लक्ष्य धर्मकी रक्षामें कटिबद्ध होना था। आवश्यकतानुसार देश-काल-परिस्थितिके आधारपर वे सत्याग्रह एवं संघर्षके लिये भी तत्पर थे। साथ ही इस निमित्त उन्होंने राजनीतिमें भाग लेना आवश्यक समझा। इसलिए वे शंकराचार्यका पद स्वीकार करनेके लिये तैयार नहीं हुए। इस कारण स्वामी ब्रह्मानन्दजीको अपनी वसीयत बदलनी पड़ी। ऐसा सुना जाता है कि उन्होंने कई बार वसीयत लिखी।

ज्योतिष्पीठ-शंकराचार्य पदपर स्वामी कृष्णबोधाश्रमजीका अभिषेक

कुछ दिनों बाद ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी ब्रह्मानन्दजी ब्रह्मीभूत हो गये। उन दिनों महाराजश्री मन्दिर-प्रवेश-आन्दोलनके सिलसिलेमें जेलमें बंद थे। उन्हें तत्काल पैरोलपर जेलसे मुक्त किया गया। महाराजश्रीके नेतृत्वमें शंकराचार्यजीकी अन्त्येष्टि आदि क्रियाएँ सम्पन्न हुईं। ज्योतिष्पीठके शिष्य-मण्डलने महाराजश्रीसे अनुरोध किया कि वे इस पदको सँभालें तथा ज्योतिष्पीठका समुचित संचालन अपने हाथमें लें। परंतु महाराजने विरक्त-भावसे स्वयंको तटस्थ रखा और यह स्वीकार नहीं किया। तत्पश्चात् कुछ शिष्योंने किसी कथित वसीयतके अनुसार स्वामी शान्तानन्दजी सरस्वतीको इस पदपर अभिषिक्त कर दिया। तबतक महाराज इस संदर्भमें पूर्णतः निरपेक्ष थे। परंतु उसी समय काशी विद्वत्-परिषदके विद्वानोंका एक प्रतिनिधि-मण्डल महाराजश्रीसे मिला तथा स्वामीजी महाराजसे यह अनुरोध किया कि जिस गद्दीके आप शिष्य हैं, उस गद्दीपर मठाम्नाय-शासनके अनुसार किसी सुयोग्य विद्वान् व्यक्तिको शंकराचार्यके पदपर बैठाया जाना चाहिये। विद्वत्-मण्डलीने विशेष आग्रहपूर्वक महाराजसे यह प्रार्थना की। अन्ततोगत्वा महाराजश्रीने वीतराग संन्यासी स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज, जो उच्चकोटिके एक मूर्धन्य विद्वान्के साथ-साथ परम विरक्त संत थे, उनका नाम ज्योतिष्पीठके शंकराचार्यके लिये घोषित कर दिया। काशीके ज्ञानवापी प्राङ्गणमें उनके अभिषेककी तिथि भी घोषित कर दी गयी। यद्यपि स्वामी कृष्णबोधाश्रमजी महाराज धर्मकार्योंमें करपात्रस्वामीके पूर्ण अनुयायी थे, उनकी सभी बातोंको वे हृदयसे बिना किसी हिचकिचाहटके स्वीकार करते थे, परंतु जब उन्होंने ज्योतिष्पीठके शंकराचार्य-पदपर अभिषिक्त होनेकी बात सुनी तो उन्होंने बिना बताये अज्ञातवासके लिये प्रस्थान कर दिया। वे कहाँ गये, यह किसीको पता नहीं था। श्रीस्वामीजी महाराजको जब यह सूचना मिली तो स्वाभाविक रूपसे उन्हें भी चिन्ता हुई; कारण, शंकराचार्यके अभिषेककी सार्वजनिक घोषणा हो चुकी थी। महाराजश्रीने तत्काल कई लोगोंको उनका पता लगानेके लिये भेजा, अन्तमें कुछ लोगोंने उनका पता भी लगा लिया और यह मालूम हुआ कि वे कानपुरकी ओर गङ्गाके किनारे पैदल यात्रा कर रहे हैं। महाराजश्रीको जब यह समाचार मिला, तब वे मोटरद्वारा स्वयं उस क्षेत्रमें पहुँचे और स्वामी कृष्णबोधाश्रमजीसे शास्त्रानुसार इस पदको सँभालनेका आग्रह किया। स्वामी कृष्णबोधाश्रमजी महाराजने कहा कि धार्मिक कार्य-क्षेत्रमें आपकी बातको पूर्णरूपसे स्वीकार करनेका निर्णय मैंने पहलेसे ही कर रखा है, परंतु इस पदको स्वीकार करनेमें मेरी कुछ शर्तें भी हैं। उनकी पहली शर्त थी कि मैं कौशेय (रेशमी) वस्त्र धारण नहीं करूँगा। खादीका जो मोटा वस्त्र अभी है, आगे भी वही रहेगा। दूसरी शर्त थी—मिट्टीका एक कमण्डल वे हाथमें रखते थे—इसे नहीं छोड़ूँगा। तीसरी शर्त थी कि सभा आदिमें कहीं भी सिंहासनकी प्रतीक्षा नहीं करूँगा, चौकी आदि जो भी आसन उपलब्ध रहेगा वहीं बैठ जाऊँगा। महाराजश्रीने इन शर्तोंको बड़े स्नेह और प्रेमसे स्वीकार किया और कहा कि ये शर्तें तो आपके व्यक्तित्वकी आभूषण हैं। निर्धारित समयपर तत्कालीन पूर्वाम्नाय द्वारका-शारदा पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी सच्चिदानन्दतीर्थके द्वारा काशीमें ज्ञानवापीके प्राङ्गणमें ज्योतिष्पीठके शंकराचार्यके पदपर स्वामी कृष्णबोधाश्रमजीका अभिषेक समारोहपूर्वक कर दिया गया। स्वामी कृष्णबोधाश्रमजी महाराज ज्ञानियोंमें अग्रगण्य, परम विरक्त, मूर्धन्य विद्वान् और उच्चकोटिके संन्यासी थे, उन्होंने अनासक्त-भावसे जीवनपर्यन्त इस पदका निर्वाह किया। उनकी ज्ञानमयी ध्यानकी साधना थी। वे प्रातः तीन बजेसे नौ बजेतक लगातार समाधिस्थ होकर ध्यानावस्थित हो जाते। बिना

घड़ी देखे समयसे उनका ध्यान टूटता। ध्यानावस्थामें बाह्य वस्तुओंका उन्हें ज्ञान नहीं रहता। मेरे पूज्य पिताजीने मुझसे एक बार बताया कि ध्यानावस्थामें बाहर ढोल, बाजा एवं नगाड़े आदि बजनेपर भी स्वामीजी महाराजको कोई व्यवधान उपस्थित नहीं होता। उतने क्षणोंमें वे पूर्ण अन्तर्मुख रहते। वे २४ घंटेमें एक बार भिक्षा ग्रहण करते और एक बार ही जल ग्रहण करते। ऐसा कहा जाता कि वे रात्रिमें सोते भी नहीं, बैठे-बैठे ही अपनी निद्रा पूर्ण कर लेते। इस प्रकारका तपोमय साधनापूर्ण जीवन उनका था। अनन्तश्री स्वामी करपात्रीजीसे उनके कुछ अन्तरंग अटूट संबन्ध थे। वे दोनों एक-दूसरेके परम सुहृद और आन्तरिक मित्र थे।

एक बार जब स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज वृन्दावन विहारी-भवनमें अस्वस्थ थे, तब श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज भी वहाँ उपस्थित थे। वे अपनी साधनासे अतिरिक्त समयमें पुनः स्नानकर दिनमें १० बजे से १२ बजेतक दो घंटे स्वामीजी महाराजके स्वास्थ्य-रक्षाके निमित्त पुनः ध्यानमें बैठ जाते। महाराजश्रीके समक्ष स्वामी कृष्णबोधाश्रमजी महाराजकी कुछ चर्चा चली तो महाराजश्रीने डबडबाई आँखोंसे कहा कि ये महात्मा आप्तकाम परम निष्काम आत्माराम हैं। पर इस स्थितिमें भी मेरे स्वास्थ्यकी रक्षाके लिये वे साधन-भजन-अनुष्ठान करते हैं। यह उनका मेरे प्रति परम सौहार्द है।

धर्मरक्षार्थ विभिन्न कार्यक्रम

सर्वप्रथम लोक-जीवनमें महाराजश्रीका पदार्पण दिल्लीमें हुए विशाल यज्ञसे ही प्रारम्भ हुआ। इस यज्ञने पूरे देशमें जन-जागृति कर दी। इन दिनों यज्ञकी परम्परा लुप्त-सी हो रही थी, परंतु इस यज्ञके दर्शनार्थ देशकी जनता उमड़ पड़ी। उन दिनों अंग्रेजोंका शासन था। तत्कालीन वायसराय लार्ड माउन्टबेटन दिल्लीमें यह सब देखकर आश्चर्यचकित हो रहे थे। कारण, उन्होंने पहले कभी इस प्रकारका आयोजन न देखा था, न सुना था। पूरे देशमें यज्ञका एक युग प्रारम्भ हो गया। तदनन्तर कई यज्ञ-यागादि वाराणसी, कानपुर, पटना तथा अन्य स्थानोंमें महाराजद्वारा बृहद् रूपमें सम्पन्न हुए। अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ, अखिल भारतीय रामराज्य-परिषद्, अखिल

भारतीय गोरक्षार्थ अहिंसात्मक धर्मयुद्ध-समिति, धर्मवीर-दल, धर्मसंघ शिक्षा-मण्डल आदि विभिन्न संस्थाओंकी स्थापना महाराजने की। इसके साथ ही लोक-जीवनको धर्मकी ओर प्रवृत्त करनेके लिये विभिन्न समाचार-पत्र—दैनिक सन्मार्ग, मासिक 'सिद्धान्त'-जैसे आध्यात्मिक पत्रोंका संचालन किया। स्मार्त यज्ञोंके साथ सर्ववेद-शाखा-सम्मेलन, अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ महाधिवेशन तथा गोरक्षा आदि विभिन्न सांस्कृतिक सम्मेलनोंका आयोजन होता; जिनमें पीठासीन जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य, श्रीरामानुजाचार्य, श्रीनिम्बार्काचार्य तथा अन्य सभी धर्माचार्य और विद्वद्गण प्रायः सम्मिलित होते। देश के प्रसिद्ध सनातनधर्मी विद्वद्गण महामहोपाध्याय पं० गिरिधरजी शर्मा चतुर्वेदी, शास्त्रार्थ-महारथी पं० माधवाचार्यजी शास्त्री, पं० श्रीअखिलानन्दजी शर्मा तथा बाबा मस्तराम आदि कई शास्त्रनिष्णात एवं शास्त्रार्थी विद्वानोंका जमघट होता। विचार-विनिमय चलता तथा धर्मसे सम्बन्धित विभिन्न समस्याओंपर प्रश्नोत्तर-शंका-समाधान आदि होते। इन सब कार्योंको सम्पन्न करते हुए भी महाराजश्रीका व्यक्तिगत जीवन संसारके प्रपञ्चोंसे रहित था। लोकहितमें धर्मकी रक्षाके लिये सर्वसाधारणको सत्कार्यमें प्रवृत्त करनेकी दृष्टिसे ही वे इन सब धर्म-कार्योंमें प्रवृत्त थे।

धर्मकी संस्थापना और उसकी रक्षामें तत्पर

'शास्त्रानुसार धर्मकी संस्थापना और उसकी रक्षा' यह महाराजके जीवनका सत्संकल्प था। तपोमयी एकान्त साधनाके बाद सर्वप्रथम महाराजश्रीका पदार्पण जब लोक-सम्पर्कमें हुआ तो उन्होंने 'अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ' की स्थापना की। शास्त्रसे समन्वित सिद्धान्त और कुछ नियम निर्धारित किये गये। सामूहिक सत्संग और सभाओंका आयोजन किया जाने लगा। बड़े-बड़े यज्ञ, महाधिवेशन होने लगे। एक धार्मिक समाँ बँध गयी।

महाराजश्रीने भारतकी धार्मिक जनताको चार धार्मिक नारे प्रदान किये, जो भारतीय संस्कृतिके मूल सिद्धान्तोंसे समन्वित थे और धार्मिक जनताके लक्ष्य एवं जीवनसे जुड़े थे। ये नारे थे—

(१) **'धर्मकी जय हो'**, (२) **'अधर्मका नाश हो'**, (३) **'प्राणियोंमें सद्भावना हो'** और (४) **'विश्वका कल्याण हो'**—महाराजश्रीके

कार्यकलापोंका उद्देश्य क्या है, यह इन चार उद्घोषोंसे ज्ञात हो जाता है। इसलिये धर्मसंघके जो भी कार्यक्रम प्रारम्भ होते उनमें सर्वप्रथम '**श्रीराम जय राम जय जय राम**' की नाम-ध्वनिका कीर्तन होता और बादमें इन नारोंका उद्घोष होता। अन्तमें 'हर हर महादेव'के द्वारा ही कार्यक्रमकी पूर्णाहुति होती।

देशमें गो-हत्या-बंदीका प्रयास

आगे चलकर महाराजने दो नारे और जोड़े '**गोमाताकी जय हो**' और '**गो-हत्या बंद हो**'। गोमाताका रक्त भारतभूमिमें गिरना महाराजको सह्य नहीं था। उन्होंने इसके लिए आन्दोलन किया, सत्याग्रह किया और जेलकी यातनाएँ सहीं, जिसके फलस्वरूप देशके अधिकांश प्रदेशोंमें आंशिक रूपसे गोहत्या कानूनद्वारा बंद की गयी, पर महाराजको इससे संतोष नहीं हुआ। वे सम्पूर्ण भारतमें गोवंशकी हत्या बंद कराना चाहते थे। उनकी दृष्टिमें यह कानून अधूरा था। सम्पूर्ण देशमें '**गो-हत्या-बंद**' का कानून बन जाय, इसके लिये महाराजश्रीने अखिल भारतवर्षीय 'गोरक्षार्थ अहिंसात्मक धर्मयुद्ध-समिति'की स्थापना की। जिसके द्वारा सम्पूर्ण देशमें गो-हत्या-विरोधी आन्दोलन चलानेका अभियान प्रारम्भ किया। उन दिनों बंगालमें, बंबईमें, अहमदाबाद और दिल्लीमें बड़े-बड़े विशाल कसाईखाने चलते थे, जिनमें हजारोंकी संख्यामें प्रतिदिन गायें निर्दयतापूर्वक काटी जाती थीं। इन चारों स्थानोंपर अहिंसात्मक सत्याग्रहकी योजना बनायी गयी, परंतु सर्वप्रथम यह आन्दोलन सन् १९५५ में कलकत्तामें प्रारम्भ किया गया। मेरे पूज्य पिताजी श्रीसीतारामजी खेमका इस 'अखिल भारतवर्षीय समिति'के प्रधानमन्त्री मनोनीत हुए। उस वर्ष स्वामीजी महाराजने अपना चातुर्मास्य गोरक्षा-आन्दोलनके निमित्त कलकत्तामें ही किया। इनके साथ कई संत, महात्मा और नेतागण गोरक्षा-आन्दोलनके लिये कलकत्तामें डटे थे। अहिंसात्मक सत्याग्रह प्रारम्भ किया गया। प्रथम दिन दो जत्थे सत्याग्रहमें भेजे गये। एक जत्थेका नेतृत्व मेरे पूज्य पिता श्रीसीतारामजी खेमकाने किया, जो तत्कालीन पश्चिम बंगालके मुख्यमन्त्री डॉ० विधानचन्द्र रायके बँगलेपर गया। दूसरा जत्था स्वामी श्रीस्वरूपानन्दजी सरस्वती महाराज (वर्तमानमें शंकराचार्यके पदपर आसीन)-के नेतृत्वमें 'टेंगड़ा कसाईखाना' गया। सत्याग्रहियोंके हाथमें दही और मक्खन था। 'माखन खाओ, गाय बचाओ' की आवाजसे आकाश गूंज रहा था। सभी सत्याग्रही गिरफ्तार कर लिये गये। इसी प्रकार सत्याग्रहियोंके जत्थे प्रतिदिन जाते और सरकार उन्हें गिरफ्तार कर लेती। देशके कोने-कोनेसे सत्याग्रही पहुँचने लगे। कुछ ही समयमें आन्दोलनने जोर पकड़ लिया।

एक दिन कलकत्ताके एक प्रसिद्ध व्यक्ति श्रीसोहनलाल दुग्गड़के नेतृत्वमें एक जत्था सत्याग्रहके लिये गया, जिसमें लगभग ५० हजार व्यक्ति सम्मिलित थे। पुलिसने इस भीड़को रोकनेकी चेष्टा की। घुड़सवार और पुलिस फोर्स तैनात कर दी गयी। घुड़सवारोंने बढ़ती हुई भीड़को रोकना चाहा, पुलिसको लाठी-चार्ज करना पड़ा, अश्रुगैस छोड़ी गयी, हवाई फायरिंग भी हुई। इसी क्रममें भूरामल नामका एक सत्याग्रही शहीद हो गया। कई लोग घायल हो गये तथा आन्दोलनने और भी उग्ररूप धारण कर लिया। सरकारने दमन-नीतिका आश्रय लिया। सत्याग्रहके सभी कार्यालय जब्त कर लिये गये। कार्यकर्ताओंको पुलिसने गिरफ्तार कर लिया। स्वामी श्रीकरपात्रीजी तथा संत-महात्मा एवं नेतागण भी रातों-रात गिरफ्तार कर लिये गये। तदनन्तर मेरे पूज्य पिताजी श्रीसीतारामजी खेमकाको स्वामीजीका यह संदेश प्राप्त हुआ कि वे भूमिगत होकर सत्याग्रहका संचालन करें, अन्यथा सरकारकी बर्बरतापूर्ण दमन-नीतिके कारण इसके बंद होनेकी संभावना बढ़ेगी। यह समाचार उन्हें उसी दिन रात्रिमें बारह बजे मिला और वे तत्काल साधुवेशमें भूमिगत हो गये। पुलिस उन्हें खोजती रही तथा वे आन्दोलनका संचालन करते रहे। यह आन्दोलन लगभग एक वर्षतक चला। इसके साथ ही बंबई, अहमदाबाद, दिल्ली तथा अन्य प्रदेशोंमें भी गोरक्षा-आन्दोलन चलता रहा, फलस्वरूप कुछ प्रदेशोंने गो-हत्या-बंदीके कानून बनाये भी, परंतु जिस प्रकारका कानून स्वामीजी चाहते थे वैसा कानून नहीं बना, इसमें पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हुई।

गो-रक्षार्थ महाभियान

महाराजश्रीका यह संकल्प था कि सम्पूर्ण भारतमें गो-वंशकी हत्या केन्द्रिय कानूनद्वारा प्रतिबन्धित होनी चाहिये। इसके लिये महाराजश्री अनवरतरूपसे

प्रयत्नशील थे। भारतीय संस्कृतिमें विश्वास रखनेवाली देशकी सभी संस्थाओंसे, संत-महात्माओं, साधु-समाज तथा देशके नेताओंसे महाराजश्रीने सम्पर्क किया और एक सुदृढ़ संगठन 'गो-रक्षा महाभियान-समिति' का गठन किया गया, जिसके अध्यक्ष पुरीपीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य श्रीनिरञ्जनदेवजी तीर्थ मनोनीत हुए। उन्होंने यह घोषणा की कि 'देशमें जबतक गोवंशकी हत्या बंद न होगी तबतक वे आमरण अनशन करेंगे'।

इसके बाद तत्काल ही ७ नवम्बर, १९६६ को दिल्लीमें संसद्-भवनके सामने एक बहुत बड़ी रैली आयोजित की गयी। देशके कोने-कोनेसे जनताका हुजूम (भीड़) दिल्ली पहुँच गया। लालकिलासे शोभायात्रा प्रारम्भ हुई, जो संसद्-भवनके सामने मैदानमें एक बृहत् सभाके रूपमें परिणत हो गयी। यह शोभायात्रा इतनी विशाल थी कि नरमुण्डोंके अतिरिक्त इसका कोई ओर-छोर नहीं दिखायी देता था। इस शोभा-यात्रामें नागा साधुओंके अतिरिक्त अयोध्याके वैरागी, काशीके साधु-संन्यासी, महाराष्ट्रके संत-महात्मा तथा देशके कोने-कोनेसे आकर नागरिकोंने भाग लिया। एक विशाल मंच बनाया गया था। जिसमें सर्वोच्च समितिके सदस्योंके अतिरिक्त देशके प्रमुख नेतागण उपस्थित थे। सर्वप्रथम महाराजश्रीने इस सभाको संबोधित किया। इसके बाद अन्य नेताओंने भी व्याख्यान दिये। इसी बीच संसद्-भवनके सामने पुलिसने अश्रुगैस छोड़ी और गोलियाँ चलायीं। भगदड़ मच गयी और सभा विसर्जित हो गयी।

अपनी घोषणाके अनुसार पुरीपीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य श्रीनिरञ्जन-देवजी तीर्थने दिल्लीमें निगमबोधघाट-स्थित धर्मसंघ महाविद्यालयमें अनशन करना प्रारम्भ कर दिया। दूसरे ही दिन सरकारने उन्हें गिरफ्तार कर पांडिचेरी जेलमें भेज दिया। सरकारके इस कार्यसे सारे देशमें वातावरण अशान्त हो गया। संसद्में भी 'श्रीमाधव हरि अणे' नामक एक प्रतिष्ठित सांसदने शंकराचार्यकी सहानुभूतिमें अनशन करनेकी घोषणा कर दी। तत्काल शंकराचार्यजीको मुक्तकर पांडिचेरीसे पुरी-स्थित उनके गोवर्धन-मठपर पहुँचाया गया। वहाँ उनका यह अनशन ७२ दिनोंतक चलता रहा।

इधर दिल्लीमें गोरक्षा-महाभियानके तत्त्वावधानमें सत्याग्रहके संचालनार्थ एक सर्वोच्च समिति गठित की गयी। जिसमें देशके प्रमुख सात नेताओंको

सदस्यके रूपमें मनोनीत किया गया। धर्मसम्राट् अनन्तश्री स्वामी श्रीकरपात्रीजी, पुरीपीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीनिरञ्जनदेवजी तीर्थ, 'कल्याण'के आदिसम्पादक भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघके सर संघचालक श्रीगोलवलकरजी, भारत-साधु-समाजके अध्यक्ष श्रीगुरुचरणदासजी, संत प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी आदि विशिष्ट व्यक्ति इसमें सम्मिलित थे। देशके कोने-कोनेसे संत-महात्मा, साधु-वैरागी एवं गृहस्थ लोग दिल्ली आने लगे। आन्दोलनने उग्ररूप धारण कर लिया। सत्याग्रहियोंका ऐसा तांता लगा कि कारागारमें भी स्थानाभाव हो गया। धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज भी गिरफ्तार कर तिहाड़ जेल भेज दिये गये। जेलमें भी सत्संग होने लगा। संत-महात्माओंसे जेल भर गया। सरकार भी विचलित होने लगी। तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधीने समझौतेके लिये भरपूर प्रयास करना प्रारम्भ कर दिया। परंतु जगद्गुरु, शंकराचार्य अपने उपवासमें दृढ़ थे। महाराजश्री एवं अन्य नेतागण भी पूर्ण गोवंश-हत्या बंद होनेतक आन्दोलनके लिये कटिबद्ध थे। अनशनके लगभग ७२ दिन पूरे होने जा रहे थे। अन्तमें सरकारने यह आश्वासन दिया कि वह एक समिति गठित करती है जो 'गो-हत्या-बंदी-कानून'का प्रारूप समितिके सदस्योंके परामर्शसे छः महीनेके भीतर तैयार करेगी और गो-वंशकी हत्यापर कानूनद्वारा प्रतिबंध लगाया जायगा। सरकारके इस स्पष्ट आश्वासनपर महाराजश्रीने पुरीके जगद्गुरु शंकराचार्यसे अनशन तोड़नेका अनुरोध किया; क्योंकि महाराजश्रीको यह अभीष्ट नहीं था कि इस उपवासके क्रममें शंकराचार्यके प्राणपखेरू उड़ जायँ। वे यह समझते थे कि गोरक्षा एवं धर्मरक्षाके लिये इस धर्मप्रहरीका जीवित रहना आवश्यक है। अन्ततोगत्वा सरकारके आश्वासनपर शंकराचार्यजीका उपवास पूरा हुआ और आन्दोलन भी समाप्त हुआ। यद्यपि सरकारने अपने आश्वासनके अनुसार यह कार्य पूरा नहीं किया।

तिहाड़ जेलमें आक्रमण

गोरक्षा-महाभियानके क्रममें महाराजश्री तिहाड़ जेलमें बंद थे ही। वहाँ भी सत्संगका कार्यक्रम चलता था। एक दिन जब सत्संग चल रहा

था, महाराजश्रीकी कथा हो रही थी, उसी समय अकस्मात् जेलके कुछ अन्य खूँखार कैदियोंने लोहेकी छड़ोंसे महाराजपर आक्रमण कर दिया। महाराजने बताया कि यह आक्रमण इतना घातक था कि कुछ क्षणोंके लिये उन्हें ऐसा अनुभव हुआ जैसे प्रलय हो गया। यदि इसका लेशमात्र पूर्वाभास महाराजको हो जाता तो मन्त्रोपचारसे यह विफल भी किया जा सकता था, परंतु सबकुछ अचानक हुआ। उस समय सर्वेश्वर सर्वशक्तिमान् परमपिता प्रभुने महाराजके जीवनकी रक्षा की। आँखोंपर विशेष चोटें लगी थीं। डॉक्टरोंने यह घोषित कर दिया कि एक आँखकी ज्योति तो चली गयी तथा दूसरी आँखकी ज्योतिके जानेकी भी संभावना है। यह सुनकर महाराजने विशिष्ट रूपमें सूर्योपासना प्रारम्भ कर दी। वे प्रतिदिन द्वादश सूर्य-नमस्कार तथा चाक्षुषोपनिषद्-मन्त्रोंका पाठ आदि करने लगे। जिससे प्रसन्न होकर भगवान् आदित्यनारायणने दोनों आँखोंकी ज्योतिकी रक्षा की तथा अन्तिम क्षणोंतक आँखकी ज्योति ठीक रही।

धर्मसंघके तत्त्वावधानमें शास्त्रसे विरुद्ध किसी भी कानूनका महाराजश्रीने निर्भीकतापूर्वक विरोध किया और इसके लिये जन-जागृति भी की।

रामराज्य-परिषद्की स्थापना

महाराजने यह विचार किया कि शासनके अधार्मिक और अनैतिक प्रवाहको बिना राजनीतिमें प्रवेश किये रोका नहीं जा सकता, तब महाराजने 'रामराज्य-परिषद्'की स्थापना की, जो पूर्ण राजनीतिक संस्था थी। भगवान् रामके राज्यमें जो नियम और कानून थे, वे ही इस संस्थाके नीतिगत सिद्धांत थे। महाराजके मनमें यह कल्पना थी कि भारत-जैसे देशमें रामराज्य-जैसा शासन होना चाहिये, जहाँ सबको समान-रूपसे न्याय सुलभ हो सके तथा यहाँकी जनता सर्वविध सुखी हो सके। महाराजने 'मार्क्सवाद और रामराज्य' नामकी एक पुस्तक भी लिखी, जो गीताप्रेस, गोरखपुरद्वारा प्रकाशित है। इसमें समाजवाद और पूँजीवाद तथा रामराज्य आदिकी सविस्तृत व्याख्या की गयी है तथा शास्त्रीय सिद्धांतानुसार राज्य और शासनका स्वरूप क्या होना चाहिये, इन सब बातोंपर प्रकाश डाला गया है।

सन् १९५२ में 'रामराज्य-परिषद्'की ओरसे विभिन्न प्रदेशोंकी विधान-सभाओं तथा केन्द्रिय संसद्के लिये प्रत्याशी खड़े किये गये, जिसमें परिषद्को अच्छी सफलता मिली। किसी प्रदेशमें रामराज्यकी सरकार तो नहीं बनी, परंतु राजस्थान आदि कई प्रदेशोंमें यह राजनीतिक दल मुख्य विरोधी दलके रूपमें उभरा। राजस्थानमें तो इसके ५२ प्रत्याशी जीते। कांग्रेसकी सरकार बनी और 'रामराज्य-परिषद्' मुख्य विरोधी दल बना। संसद्में भी इसके कई प्रत्याशी निर्वाचित होकर गये। जिन्होंने भारतीय संस्कृति और सनातनधर्मके विपरीत संसद्में जो भी प्रस्ताव आये, उनका कड़ा विरोध किया। उन दिनों हिन्दू महासभा, जनसंघ तथा रामराज्य-परिषद्—ये तीनों संस्थाएँ हिन्दू विचारधाराका संसद्में प्रतिनिधित्व करती थीं। परंतु रामराज्य-परिषद्का उद्देश्य पूर्ण शास्त्रविधि तथा परम्पराके अनुसार रामराज्यकी रूपरेखाके आधारपर राज्य-शासनका संचालन करना था। इसीलिये संसद्में रामराज्य-परिषद्के सांसदोंद्वारा 'हिंदू कोड बिल' तथा हिन्दू शास्त्रोंके विपरीत जो भी प्रस्ताव आये उनका प्रबल विरोध किया गया। गो-वंश-हत्याके विरुद्ध कानून बनानेका प्रस्ताव भी लाया गया, जो बहुमतके अभावमें पारित न हो सका। इस प्रकार धर्मकी रक्षामें ये सांसद और विधायक निरन्तर संघर्षरत रहे। भारतकी अखण्डता तथा राष्ट्रभाषा हिन्दीके साथ ही संस्कृतके उन्नयनके लिये परिषद्द्वारा बराबर प्रयत्न चलता रहा। ऐसे ही देशकी अन्यान्य ज्वलन्त समस्याओंके सम्बन्धमें भी परिषद्द्वारा समय-समयपर विचार-विमर्श होते रहे और देश तथा जनताको मार्गदर्शन मिलता रहा।

धर्मसंघ-शिक्षा-मण्डलकी स्थापना

महाराजश्री यह चाहते थे कि देशके बच्चोंको उनके अधिकारानुसार भारतीय संस्कृति और पुरातन-परम्पराओंके अन्तर्गत देववाणी संस्कृत और अन्य विषयोंकी शिक्षा इस रूपमें प्रदान की जाय कि वे अपने वास्तविक स्वरूपको पहचान सकें और शिक्षाके स्वान्तःसुखाय उद्देश्योंसे भी परिचित हो सकें, इसके लिये उन्होंने काशी में 'धर्मसंघ-शिक्षामण्डल'की स्थापना की, जहाँ अन्य विषयोंके साथ व्याकरण, साहित्य, ज्योतिष, न्याय, सांख्य, वेद-वेदाङ्ग और वेदान्त आदि विभिन्न विषयोंके अध्यापनका प्रबन्ध विद्वान् अध्यापकोंद्वारा किया गया। जो प्राय: स्वेच्छा-सेवाभावसे ही अध्यापन-

कार्य करते तथा संस्थासे जो दक्षिणा प्राप्त होती उसीसे अपना जीवन-यापन करते। वे सरकारी वेतन या सहायता भी स्वीकार नहीं करते। यहाँकी परीक्षाएँ स्वतन्त्र रखी गयीं। पाठ्यक्रम प्राचीन पद्धतिपर आधारित था। किसी विश्वविद्यालयसे इसे सम्बद्ध नहीं किया गया तथा यहाँके नियम-पालनमें कोई बाधा न आये इस दृष्टिसे सरकारी सहायता भी स्वीकार नहीं की गयी। यहाँके छात्रोंके लिये संध्या-वन्दनादि शास्त्रीय नियमोंका पालन करना भी अनिवार्य था। आज भी यहाँसे निकले हुए कई ऐसे विद्वान् उपलब्ध हैं, जिनका जीवन अत्यन्त सात्त्विक है और धार्मिक क्षेत्रमें अग्रणी माने जाते हैं। वे यहाँके ही स्नातक हैं।

सुमेरुपीठकी स्थापना

चूँकि ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वतीजी महाराजसे महाराजश्रीने दण्ड ग्रहण किया था। इस प्रकार शंकराचार्यकी परम्परामें महाराजश्री दीक्षित थे। आदिशंकराचार्यके सिद्धांतोंको महाराजने आत्मसात् किया था। आदिशंकराचार्यद्वारा भारतमें प्रतिष्ठापित चारों पीठोंकी मर्यादा और प्रतिष्ठाकी सुरक्षापर महाराज ध्यान रखते थे। साथ ही इन चारों पीठोंपर पदासीन शंकराचार्योंके त्याग-वैराग्य, शिक्षा-दीक्षा और सिद्धान्तपालन आदि बातोंपर भी महाराजकी दृष्टि निरन्तर रहती थी, जिससे आचार्योंद्वारा शास्त्रीय परम्पराओंका लोप न हो जाय।

धर्मप्रचारार्थ देशके चारों कोनोंमें चार पीठोंकी स्थापना आदिशंकराचार्यने की थी, पर शास्त्रोंमें इसके अतिरिक्त सुमेरुपीठका वर्णन भी मिलनेके कारण महाराजश्रीने काशीमें पाँचवें पीठ 'सुमेरुपीठ'की स्थापना की, जिसके शंकराचार्य-पदपर सर्वप्रथम अनन्तश्री स्वामी महेश्वरानन्द सरस्वतीजी महाराजका प्रयागराजमें अभिषेक किया गया। वे पूर्वाश्रममें पं० श्रीमहादेवशास्त्रीके नामसे साहित्य, व्याकरण, न्याय, सांख्य और वेदान्तके उत्कृष्ट कोटिके विद्वान् माने जाते थे। आपने महाराजश्रीसे ही दण्ड-संन्यास ग्रहण किया था। आपके ब्रह्मीभूत हो जानेपर महाराजश्रीके शिष्य स्वामी शंकरानन्दजी सरस्वती पदासीन हुए तथा उनके ब्रह्मीभूत होनेपर वर्तमानमें स्वामी श्रीचिन्मयानन्दजी सरस्वती विराजमान हैं।

दैनिक दिनचर्या

स्वामी श्रीकरपात्रीजीकी दैनिक दिनचर्या भी विलक्षण थी, जिसे उनके भक्तगण भी नहीं जान पाते। रात्रिमें १ बजे प्रायः वे प्रतिदिन उठ जाते और तत्काल स्नानकर अपने जप-ध्यान-समाधिमें बैठ जाते। प्रातः तीन बजे शौचादि कृत्योंसे निवृत्त होकर पुनः स्नान करते तथा ३.३० बजेसे ५ बजेतक प्रातः एकाकी भ्रमण (चार-पांच मील पैदल घूमने)-का कार्यक्रम चलता। भ्रमणके समय आगमोक्त स्तोत्र-पाठ तथा जप चलता रहता। प्रातः पाँच बजेसे ८ बजेतक अर्चन-पूजनकी क्रिया सम्पन्न होती। यह कार्यक्रम उनका नियमित रूपसे निरन्तर चलता। यहाँतक कि यात्रामें भी इस कार्यक्रमका निर्वाह वे पूरी तत्परतासे करते। महाराजकी यात्रा रेलगाड़ीमें तो होती नहीं थी, मोटरकारसे ही वे बराबर यात्रा करते थे। रात्रिमें गाड़ी तबतक चलती, जबतक वे शयन करते। रात्रिमें एक बजे गाड़ी रोक दी जाती और वे अपने दैनिक कृत्यमें संलग्न हो जाते। महाराजकी अर्चा-पूजा प्रतिदिन तीन बार होती थी। प्रातःकालीन पूजा प्रायः एकाकी—एकान्तमें होती थी। मध्याह्नकालीन पूजा दिनमें लगभग १२ बजे तथा सायंकालीन पूजा रात्रिमें ७.३० से ९.३० बजेतक होती। दोपहर और रात्रिका पूजन सर्वसाधारण भक्तजनोंके मध्यमें होता। प्रातः ८ से १२ तक तथा सायं ६ से ७.३० के मध्य सर्वसाधारणसे मिलने-जुलने तथा पठन-पाठन, स्वाध्याय और लेखन आदिका कार्य होता। महाराजश्रीके पूजनमें श्रीयन्त्र, शालग्राम-शिला, एकादश नर्मदेश्वर तथा बाणलिङ्ग, पारदलिङ्गादि कई शिवलिङ्ग रहते। इसके अतिरिक्त सायंकालीन पूजामें एकादश पार्थिवेश्वरका प्रतिदिन निर्माण कर पूजन किया जाता तथा षडङ्ग रुद्राभिषेक भी सायंकालीन पूजाका ही अङ्ग था। महाराजका नियम था कि वे पूजनोपरांत शंख-ध्वनि करते थे। उनकी शंख-ध्वनि बड़ी तीव्र होती थी। इसे सुनकर आस-पासके लोग प्रसाद लेने पहुँच जाते। महाराज स्वयं अपने हाथोंसे प्रसाद वितरण करते। उनके प्रसादकी यह विशेषता थी कि कितने भी लोग प्रसाद ग्रहण करें पर वह प्रायः समाप्त नहीं होता था। पात्रमें कुछ-न-कुछ प्रसाद बचा रहता था जिससे बादमें आनेवाले लोगोंको भी प्रसादके लिये निराश न होना पड़े। दिनमें एक बजेसे ५ बजेतक

कार्य करते तथा संस्थासे जो दक्षिणा प्राप्त होती उसीसे अपना जीवन-यापन करते। वे सरकारी वेतन या सहायता भी स्वीकार नहीं करते। यहाँकी परीक्षाएँ स्वतन्त्र रखी गयीं। पाठ्यक्रम प्राचीन पद्धतिपर आधारित था। किसी विश्वविद्यालयसे इसे सम्बद्ध नहीं किया गया तथा यहाँके नियम-पालनमें कोई बाधा न आये इस दृष्टिसे सरकारी सहायता भी स्वीकार नहीं की गयी। यहाँके छात्रोंके लिये संध्या-वन्दनादि शास्त्रीय नियमोंका पालन करना भी अनिवार्य था। आज भी यहाँसे निकले हुए कई ऐसे विद्वान् उपलब्ध हैं, जिनका जीवन अत्यन्त सात्त्विक है और धार्मिक क्षेत्रमें अग्रणी माने जाते हैं। वे यहाँके ही स्नातक हैं।

सुमेरुपीठकी स्थापना

चूँकि ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वतीजी महाराजसे महाराजश्रीने दण्ड ग्रहण किया था। इस प्रकार शंकराचार्यकी परम्परामें महाराजश्री दीक्षित थे। आदिशंकराचार्यके सिद्धांतोंको महाराजने आत्मसात् किया था। आदिशंकराचार्यद्वारा भारतमें प्रतिष्ठापित चारों पीठोंकी मर्यादा और प्रतिष्ठाकी सुरक्षापर महाराज ध्यान रखते थे। साथ ही इन चारों पीठोंपर पदासीन शंकराचार्योंके त्याग-वैराग्य, शिक्षा-दीक्षा और सिद्धान्तपालन आदि बातोंपर भी महाराजकी दृष्टि निरन्तर रहती थी, जिससे आचार्योंद्वारा शास्त्रीय परम्पराओंका लोप न हो जाय।

धर्मप्रचारार्थ देशके चारों कोनोंमें चार पीठोंकी स्थापना आदिशंकराचार्यने की थी, पर शास्त्रोंमें इसके अतिरिक्त सुमेरुपीठका वर्णन भी मिलनेके कारण महाराजश्रीने काशीमें पाँचवें पीठ 'सुमेरुपीठ'की स्थापना की, जिसके शंकराचार्य-पदपर सर्वप्रथम अनन्तश्री स्वामी महेश्वरानन्द सरस्वतीजी महाराजका प्रयागराजमें अभिषेक किया गया। वे पूर्वाश्रममें पं० श्रीमहादेवशास्त्रीके नामसे साहित्य, व्याकरण, न्याय, सांख्य और वेदान्तके उत्कृष्ट कोटिके विद्वान् माने जाते थे। आपने महाराजश्रीसे ही दण्ड-संन्यास ग्रहण किया था। आपके ब्रह्मीभूत हो जानेपर महाराजश्रीके शिष्य स्वामी शंकरानन्दजी सरस्वती पदासीन हुए तथा उनके ब्रह्मीभूत होनेपर वर्तमानमें स्वामी श्रीचिन्मयानन्दजी सरस्वती विराजमान हैं।

दैनिक दिनचर्या

स्वामी श्रीकरपात्रीजीकी दैनिक दिनचर्या भी विलक्षण थी, जिसे उनके भक्तगण भी नहीं जान पाते। रात्रिमें १ बजे प्रायः वे प्रतिदिन उठ जाते और तत्काल स्नानकर अपने जप-ध्यान-समाधिमें बैठ जाते। प्रातः तीन बजे शौचादि कृत्योंसे निवृत्त होकर पुनः स्नान करते तथा ३.३० बजेसे ५ बजेतक प्रातः एकाकी भ्रमण (चार-पांच मील पैदल घूमने)-का कार्यक्रम चलता। भ्रमणके समय आगमोक्त स्तोत्र-पाठ तथा जप चलता रहता। प्रातः पाँच बजेसे ८ बजेतक अर्चन-पूजनकी क्रिया सम्पन्न होती। यह कार्यक्रम उनका नियमित रूपसे निरन्तर चलता। यहाँतक कि यात्रामें भी इस कार्यक्रमका निर्वाह वे पूरी तत्परतासे करते। महाराजकी यात्रा रेलगाड़ीमें तो होती नहीं थी, मोटरकारसे ही वे बराबर यात्रा करते थे। रात्रिमें गाड़ी तबतक चलती, जबतक वे शयन करते। रात्रिमें एक बजे गाड़ी रोक दी जाती और वे अपने दैनिक कृत्यमें संलग्न हो जाते। महाराजकी अर्चा-पूजा प्रतिदिन तीन बार होती थी। प्रातःकालीन पूजा प्रायः एकाकी—एकान्तमें होती थी। मध्याह्नकालीन पूजा दिनमें लगभग १२ बजे तथा सायंकालीन पूजा रात्रिमें ७.३० से ९.३० बजेतक होती। दोपहर और रात्रिका पूजन सर्वसाधारण भक्तजनोंके मध्यमें होता। प्रातः ८ से १२ तक तथा सायं ६ से ७.३० के मध्य सर्वसाधारणसे मिलने-जुलने तथा पठन-पाठन, स्वाध्याय और लेखन आदिका कार्य होता। महाराजश्रीके पूजनमें श्रीयन्त्र, शालग्राम-शिला, एकादश नर्मदेश्वर तथा बाणलिङ्ग, पारदलिङ्गादि कई शिवलिङ्ग रहते। इसके अतिरिक्त सायंकालीन पूजामें एकादश पार्थिवेश्वरका प्रतिदिन निर्माण कर पूजन किया जाता तथा षडङ्ग रुद्राभिषेक भी सायंकालीन पूजाका ही अङ्ग था। महाराजका नियम था कि वे पूजनोपरांत शंख-ध्वनि करते थे। उनकी शंख-ध्वनि बड़ी तीव्र होती थी। इसे सुनकर आस-पासके लोग प्रसाद लेने पहुँच जाते। महाराज स्वयं अपने हाथोंसे प्रसाद वितरण करते। उनके प्रसादकी यह विशेषता थी कि कितने भी लोग प्रसाद ग्रहण करें पर वह प्रायः समाप्त नहीं होता था। पात्रमें कुछ-न-कुछ प्रसाद बचा रहता था जिससे बादमें आनेवाले लोगोंको भी प्रसादके लिये निराश न होना पड़े। दिनमें एक बजेसे ५ बजेतक

महाराजकी पुनः एकान्त-साधना चलती, जिसमें प्रायः योगासनके साथ लगभग तीन घंटे अनवरत शीर्षासनका क्रम भी चलता। शीर्षासनमें ही वे श्रीदुर्गासप्तशती-पाठ तथा अपनी अधिकांश पूजा सम्पन्न करते।

एक बार जिज्ञासा करनेपर महाराजजीने अपने सम्पूर्ण योगासन देखनेकी मुझे अनुमति प्रदान की तथा इसी क्रममें प्रसंगवश उन्होंने यह भी बताया कि योगासन करते समय भगवदाराधन, पाठ और जप अवश्य करना चाहिये। तभी इसके करनेकी सार्थकता है। उदाहरण-स्वरूप उन्होंने कहा कि समुद्रमें सीप खोजनेके लिये मछुआरेका भी श्वास रोकनेके कारण प्राणायाम हो जाता है तथा दूसरी ओर संध्या-वन्दन और देवाराधन आदिमें भी प्राणायाम किया जाता है। इन दोनों प्रकारके प्राणायामोंमें कोई अन्तर नहीं है। अतः मात्र नश्वर शरीरकी रक्षाके लिये ही योगासन करना कोई बुद्धिमत्ता नहीं है। शारीरिक स्वस्थता तो योगासन करनेपर स्वतः प्राप्त होगी ही। योगासनका उद्देश्य तो देवाराधन ही होना चाहिये, जिससे आध्यात्मिक लाभ मिल सके और समयका पूर्ण सदुपयोग हो सके। इस प्रसंगमें महाराजने यह भी बताया कि वे अपनी अधिकांश पूजा शीर्षासनके क्रममें ही पूरी करते हैं और उस समय उनका ध्यान भी अपेक्षाकृत एकाग्र रहता है।

भिक्षामें संयम

चौबीस घंटेमें एक बार सायंकाल लगभग पाँच बजे सूर्यास्तके पूर्व महाराजकी भिक्षा होती थी, जिसमें नमक और चीनी—इन दोनोंका प्रयोग नहीं होता था। गोदुग्ध भी उपलब्ध होनेपर भिक्षाके साथ एक बार ही लेते। यह बात प्रसिद्ध थी कि महाराजको भिक्षा करनेमें समय नहीं लगता, तीन मिनट या पाँच मिनटमें ही उनकी भिक्षा हो जाती, जो कुछ समय लगता भगवान्‌का भोग लगानेमें ही लगता। प्रातः-रात्रि तथा अन्य समयमें एक बारकी भिक्षाके अतिरिक्त वे फल इत्यादि भी ग्रहण नहीं करते। आवश्यकता पड़नेपर यदा-कदा औषधि या उससे संबन्धित अनुपान आदि ही स्वीकार करते।

सदाचरणसे उपदेश

महाराजश्रीकी भिक्षामें और भी कई प्रकारकी सीमाएँ रहतीं। एक बार महाराजश्री हरिद्वार पधारे। वहाँ एक दण्डी स्वामी भूमानन्दजी महाराजके आश्रममें ठहरे थे। आश्रमके स्वामी श्रीभूमानन्दजीने महाराजश्रीकी भिक्षामें बादाम, पिस्ता और किसमिस आदि कुछ मेवा भी रख दिया। यह देखकर पहले तो महाराजने जिज्ञासा की, बादमें उनकी भावनाको समझकर उसे स्वीकार कर लिया। परंतु अपने ब्रह्मचारीसे कहा कि आज तो ठीक है, पर कलसे भिक्षामें यह सब सामग्री मत लेना। दूसरे दिन पुनः स्वामी भूमानन्दजीने वे सामग्रियाँ उनकी भिक्षामें देनी चाहीं तब ब्रह्मचारीने उन्हें बताया कि महाराजजीने मना किया है। पर वे माने नहीं, किसमिस तथा बादाम आदिको सिलपर चटनीकी तरह पिसाकर भिक्षामें रख दिया। महाराजके मना करनेपर उन्होंने विशेष आग्रह किया। इसपर महाराजने कहा कि साधुको भिक्षामें कीमती सामग्री लेनेका अभ्यास नहीं रखना चाहिये। सामान्यतः साधारण भिक्षा ही महाराजको अभीष्ट थी। इस प्रकार महाराजश्री सदैव अपने सदाचरणसे ही दूसरोंको भी उपदेश देते।

महाराजने किसी संदर्भमें मुझे बताया कि एक बार वे पर्यटनमें कहीं निकले हुए थे। वहाँ एक मोटी-सी महिला बैठकर दाहिने हाथसे खा रही थी, पैरसे कुत्तेको रोटी डाल रही थी और बायें हाथसे भिक्षा दे रही थी। महाराजश्रीको भी उसने इसी तरह भिक्षा दी। वे कई दिनोंसे भूखे भी थे। महाराजने उसकी भिक्षा स्वीकार कर ली। एक दूसरी घटना महाराजने इस प्रकार बतायी—एक बार वे भिक्षाके लिये किसी गृहस्थके घर गये। एक ब्राह्मण-परिवार था, जिसकी कुमारी कन्याने दरवाजेपर आकर भिक्षा देना चाहा। महाराजने उस भिक्षाको अस्वीकार कर दिया और कहा कि कुमारी कन्याके हाथकी भिक्षा नहीं ले सकते। तब गृहस्वामीने दूसरी भिक्षा स्वयं लाकर दी। मैंने पूछा—'महाराज, आपने मोटी महिलासे उस रूपमें भिक्षा स्वीकार कर ली और इस भिक्षाको अस्वीकार कर दिया ऐसा क्यों?' तब महाराजने उत्तर दिया कि यदि मैं वहाँ अस्वीकार करता तो मुझे उस

महिलाकी झिड़की सुननी पड़ती और वहाँ दूसरी भिक्षा मिलनेका कोई उपाय नहीं था, जबकि मैं कितने समयसे भूखा भी था। इस दूसरी भिक्षामें शिष्ट परिवार था, उन्हें मर्यादा-पालनके निमित्त शास्त्रकी बात बतानी थी। विवाहके पूर्व कुमारी कन्याकी संज्ञा शूद्रवत् होनेके कारण उसके द्वारा स्पर्श की हुई भिक्षा स्वीकार करना उचित नहीं था। इसी प्रकार यज्ञोपवीतके पूर्वतक द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) बालककी संज्ञा भी शूद्रवत् होती है।

महाराजने एक घटना और भी सुनायी। एक महिला भिक्षाके लिये महाराजसे बराबर आग्रह करती हुई कहा करती थी कि महाराज, किसी दिन मेरे घरपर भिक्षा लेकर हमें अनुगृहीत करें। महाराजजी टालते थे। एक दिन महाराजजीने स्वाभाविक संन्यासीके रूपमें जब उस महिलाके घर पहुँचकर भिक्षाके लिये '**ॐ नारायणो हरिः**' किया तो महिलाने भी स्वाभाविक रूपसे कहा—'महाराज आगे बढ़ो'। तब महाराजजी तत्काल वहाँसे चल दिये। थोड़ी देर बाद ही वह महिला पुनः आकर आग्रह करने लगी कि 'महाराज, मेरे घर भिक्षाके लिये पधारनेकी कृपा कब करेंगे?' तब महाराजजीने कहा—'मैं तो तुम्हारे घरकी भिक्षा कर आया। तुमने तो भिक्षामें 'आगे बढ़ो'का उपदेश किया।' यह सुनकर वह महिला अत्यधिक लज्जित हो गयी और अपने कृत्यपर पश्चात्ताप करने लगी। उसने मनमें यह निश्चय किया कि भविष्यमें अब घरपर पधारे किसी याचकको झिड़कनेके बदले नारायणरूप मानकर हाथसे भिक्षा देकर ही उसका सम्मान करूँगी।

चातुर्मास्य-काल

चातुर्मास्यके समयमें महाराजकी दिनचर्याका पूर्णरूपेण दर्शन होता था, कारण इस समय वे लगातार दो मास काशीमें ही निवास करते और तो उनकी दिनचर्या प्रायः पूर्ववत् ही रहती, पर इस समय पठन-पाठन-स्वाध्याय तथा सत्संग-कथाका कार्य अबाधगतिसे चलता। देशके विभिन्न क्षेत्रोंसे संत-महात्मा और मूर्धन्य विद्वान् तथा साधक यहाँ पधारते। प्रातः ८ बजेसे १२ बजेतक ब्रह्मसूत्र, उपनिषद्, गीता तथा अन्य गूढ़-गम्भीर ग्रन्थोंका पठन-पाठन और स्वाध्याय चलता। न्याय, सांख्य, मीमांसा, तन्त्र

चातुर्मास्यकाल में वृन्दावनविहारी भवन में प्रवचन करते हुए महाराजश्री

चातुर्मास्यकाल में वृन्दावनविहारी भवन में प्रवचन करते हुए महाराजश्री

और वेद-वेदाङ्गोंसे संबन्धित भारतीय संस्कृतिका कोई भी प्राचीनतम ग्रन्थ जिसे दूसरी जगह समझनेमें कठिनाई होती, वह महाराजके सामने लोग रखते, जिसे पढ़ानेमें महाराजकी विशेष रुचि रहती। द्वारकापीठके वर्तमान शंकराचार्य स्वामी श्रीस्वरूपानन्दजी सरस्वती, पुरीके वर्तमान पीठाधीश्वर स्वामी श्रीनिश्चलानन्दजी सरस्वती, सुमेरुपीठके वर्तमान शंकराचार्य श्रीचिन्मयानन्दजी, सुमेरुपीठके पूर्व शंकराचार्य स्वामी श्रीशंकरानन्दजी, इनके अतिरिक्त विश्वविद्यालयोंके कई विद्वान् प्राध्यापक, काशीके प्रमुख वेदाचार्य, पण्डितगण इस स्वाध्याय और पठन-पाठनके कार्यक्रममें उपस्थित रहते और महाराजश्रीके मुखारविन्दसे इन ग्रन्थोंकी व्याख्या सुनते। कुछ वर्षोंतक मेरे लिये भी एक पाठ श्रीमद्भगवद्गीता-शांकरभाष्यकी टीका महाराजके द्वारा चलायी गयी। यह पाठ मेरे उपस्थित रहनेपर ही पढ़ाया जाता। महाराजश्रीका यह स्वभाव था कि वे स्वाध्याय अथवा पठन-पाठनके कार्यक्रमको विशेष महत्त्व देते। महाराजसे विशेष स्नेह होनेके कारण महाराजश्रीने एक बार मुझे आदिशंकराचार्य विरचित 'श्रीसौन्दर्यलहरी' तथा 'भर्तृहरि'के तीनों शतक पढ़नेकी प्रेरणा दी। मैंने कहा—'महाराज, आप तो वाराणसीमें रहते ही नहीं, तब यह पाठ कब चलेगा।' उन्होंने कहा—'जितने दिन मैं यहाँ रहता हूँ, उतने दिन तो चल ही सकता है।' मैंने प्रारम्भ भी किया। मेरी इस सांसारिक व्यस्तताके कारण यह कार्य अधूरा रहा। पर महाराजश्रीकी यह विशेषता थी कि जब भी मैं पुस्तक लेकर जाता, उसी समय वे सब काम छोड़कर इसके व्याख्यानको प्राथमिकता देते। एक दिन इस कार्यके अधूरे रहनेका उन्होंने मुझे उलाहना भी दिया।

वे अपनी पूजा के अतिरिक्त अन्य कार्योंकी अपेक्षा स्वाध्याय और सत्संगको प्राथमिकता देते। सायंकाल ६ बजे से ७.३० बजेतक उनके कथा-सत्संगका कार्यक्रम रहता, जिसमें श्रीमद्भागवत-रासपञ्चाध्यायी, वाल्मीकिरामायण तथा काशी-रहस्य आदिकी कथाएँ चलतीं। महाराजकी यह विशेषता थी कि स्वाध्याय और सत्संग-कथाके समय वे समाधिस्थ-जैसे हो जाते थे। पठन-पाठन और कथामें वे इतने तल्लीन हो जाते कि सामने कौन आया और कौन गया—इसका उन्हें भान भी नहीं होता। इसी

प्रकार श्रोताओंकी भी स्थिति बन जाती। इस तरह वक्ता और श्रोता दोनों उस कालमें कुछ क्षणोंके लिये समाधि-जैसी अवस्थामें हो जाते। सायंकालकी कथाके बाद रात्रि ७.३० बजेसे ८ बजेतक वे आनेवाले लोगोंसे मिलते। रात्रि ८ बजे स्नान करके सायंकालीन पूजापर बैठ जाते। रात्रि ९.३० बजेके बाद वे फलाहारकी भिक्षा करते। चातुर्मास्यके दिनोंमें उनका यही क्रम चलता। अपनी सम्पूर्ण दिनचर्याको सम्पन्न करनेके बाद एक बार रात्रिमें फल-दूधकी भिक्षा करते। आमके दिनोंमें फलमें केवल आम लेते। आम भी खाते नहीं। उसका रस निकाल दिया जाता। इस प्रकार आमका रस और दूध यही उनकी २४ घंटेमें एक बार भिक्षा होती। एक बार रात्रिमें पूजनसे निवृत्त होकर भिक्षासे पूर्व महाराजने विनोदके स्वरमें मुझसे कहा कि जैसे कोई भूखा बाघ अपने शिकारको देखकर उसपर झपटता है, वैसे ही अभी भिक्षापर दृष्टि लगी है। इस प्रकार २४ घंटेकी अनवरत साधनाके उपरान्त फलाहारकी भिक्षामें महाराजका एक विशेष आकर्षण रहता। इन दिनोंमें कभी-कभी उन्हें मास-पर्यन्त भी जल पीनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। रात्रि दस बजेसे पूर्व उन्हें शयन करनेका समय नहीं मिलता। महाराजजीकी यह विशेष बात थी कि सोनेके बाद वे प्रायः पाँच मिनटके भीतर निद्रादेवीकी गोदमें चले जाते।

परिपक्व वैराग्य

जाड़ा, गर्मी और बरसात—सभी मौसमोंमें वे प्रायः एक चद्दर ओढ़कर ही सोते। एक बारकी बात है। पौषका महीना था। अनवरत वर्षा और शीतलहरी चल रही थी। रात्रिमें सोनेके समय महाराजजीने प्रतिदिन ओढ़नेवाली पतली ऊनी चादर ओढ़ ली। भीषण ठंडमें वहाँ खड़े ब्रह्मचारीने एक कंबल लाकर उढ़ाना चाहा। महाराजश्रीने कहा कि यह कंबल मेरे पास रख दो, अभी आवश्यकता नहीं है। आवश्यक होनेपर ओढ़ ली जायगी। उसी दिन मुझे महाराजश्रीके किसी अंतरङ्ग भक्तसे मालूम हुआ कि महाराजश्रीका यह नियम है कि वे सदा एक ही चद्दर ओढ़कर सोया करते हैं। पर महाराज अपने इस वैराग्यपूर्ण आन्तरिक भावको किसीके भी समक्ष परिलक्षित नहीं

होने देना चाहते थे। उस दिन मुझे यह अनुभूति हुई कि वैराग्यकी परिपक्वताका दर्शन जो यहाँ हो रहा है, वह सम्भवतः अन्यत्र दुर्लभ ही है। महाराजजीका यह स्वभाव था कि वे अपने विषयमें प्रायः कोई चर्चा नहीं करते, पर प्रसंगवश कभी-कभी कुछ बातें सामने आ जातीं।

एक बार मैं नारदघाटमें कुछ स्वाध्यायके निमित्त महाराजके पास बैठा था। उसी समय हरी पत्तियोंको पीसकर बनी हुई देखनेमें भांग-जैसी एक गोली महाराजने जलके साथ ग्रहण की। मैंने कौतूहलपूर्ण दृष्टिसे महाराजकी ओर देखकर पूछा—'यह क्या है महाराज?' स्वामीजीने कहा—'यह पीसी हुई नीमकी पत्तीकी गोली है, इसे चैत्र कृष्णमें १५ दिन लेनेसे रक्त स्वच्छ रहता है।' मेरे शरीरमें थोड़ा कम्पन-सा हुआ। मैंने कहा—'महाराज! नीमकी तो एक पत्ती भी बड़ी कड़वी होती है, यह आप कैसे लेते हैं?' महाराजने कहा—'इसका कोई स्वाद थोड़े ही लिया जाता है, इसे तो गलेके पास जीभपर रखकर पानीसे निगल जाते हैं।' इसी संदर्भमें महाराजने बताया कि पहले जब वे दक्षिणकी पैदल यात्रामें थे तो वहाँ भिक्षाकी कोई व्यवस्था न होनेसे इसी तरह आटेकी गोलियाँ बनाकर पानीके साथ निगल जाते थे। वहाँ श्रीमार्कण्डेयजी ब्रह्मचारी भी बैठे थे। उन्होंने पूछा कि 'महाराज, आटेकी गोलियोंसे पेटमें आँव नहीं हो जायगा?' तब महाराजने कहा—'भाई! मैं इसे एक दिन छोड़कर दूसरे दिन लेता था। पेटकी जठराग्निमें सब भस्म हो जाता था। आँव तो अधिक खानेपर तथा पेट भरे रहनेपर होता है।' मैंने पुनः जिज्ञासा की कि एक दिन छोड़कर क्यों लेते थे? इसपर महाराजजीने कहा 'यह इसलिये कि कम-से-कम एक दिन भिक्षाकी कोई चिन्ता न रहे और निश्चिन्तता रहे।'

निर्जल एकादशी-व्रत

महाराजजी नियमके अटल थे। प्रत्येक एकादशीको उनका निर्जल व्रत रहता। मार्गमें या कहीं भी भीषण-से-भीषण गर्मी या आपत्कालमें भी वे एकादशीको जल ग्रहण नहीं करते। एक बार वाराणसीमें केदारघाटपर महाराजश्री विशेष रूपसे लंबे समयतक अस्वस्थ हो गये। कई दिनोंकी

चिकित्साके बाद स्वास्थ्यमें कुछ सुधार हो रहा था, परंतु कमजोरी अत्यधिक थी। इसी समय एकादशी तिथि निकट आ रही थी। वैद्यजीने निर्जल व्रतके लिये स्पष्ट मना कर दिया था। महाराजको यह अनुमान हुआ कि एकादशी तिथि मुझे नहीं बतायी जायगी। तब उन्होंने दर्शनार्थ आनेवाले विद्वानोंसे एकादशी तिथिकी सम्पुष्टि की तथा अपने निकट रहनेवालोंको यह निर्देश दिया कि एकादशीको मेरा व्रत खण्डित मत करना। तदनुसार महाराजने उस दिन भी एकादशीका निर्जल व्रत ही किया, परंतु उनके शरीरकी अवस्था निर्जल-व्रतके लायक थी नहीं, शाम होते-होते कमजोर स्वास्थ्यके कारण जल न लेनेसे चेतनामें भी कमी होने लगी। सब लोग चिन्तित थे। महाराज किसी भी स्थितिमें जल लेकर निर्जल-व्रत तोड़नेको तैयार नहीं थे। संयोगवश सायंकालके बाद पञ्चाङ्गके अनुसार द्वादशी तिथि आ गयी थी। महाराजकी शारीरिक स्थितिको देखते हुए ब्रह्मचारीने रात्रिमें ही महाराजको बताया कि एकादशी पूरी हो गयी। अब द्वादशीके पारणके लिये दूध तैयार है। महाराजने अपनी अर्धचेतनावस्थामें दूसरा दिन समझकर ही पारण स्वीकार कर किया। इस प्रकार महाराजके स्वास्थ्यकी रक्षा की जा सकी।

इसी तरह एक बार वाराणसीके सुप्रसिद्ध चिकित्सक श्रीगंगासहायजी पाण्डेयने महाराजश्रीको दूधका कल्प प्रारम्भ कराया। कल्पमें दूधकी मात्रा प्रतिदिन बढ़ायी जाती है। इस कल्पमें ७-८ लीटरतक दूधकी मात्रा पहुँच चुकी थी। संयोगवश बीचमें ही एकादशी आ गयी। कल्पके मध्यमें निर्जल व्रत सम्भव नहीं था। अब यह प्रश्न उठा कि निर्जल-व्रत छोड़ा जाय या कल्प। महाराजने इस समय भी अपना व्रत नहीं छोड़ा और उन्होंने कहा कि किसी भी स्थितिमें एकादशीका निर्जल-व्रत नहीं छोड़ सकता। इससे वैद्यजी नाराज भी हुए, परंतु महाराजने एकादशी व्रतका नियम नहीं तोड़ा। व्रतकी रक्षाके लिये बीचमें ही कल्प-क्रिया छोड़नी पड़ी। एकादशीकी ही तरह जन्माष्टमी, शिवरात्रि आदि व्रत भी महाराजके कठिन होते थे। जन्माष्टमीको रात्रि १२ बजेकी आरतीके बाद महाराज केवल तुलसीका ही प्रसाद ग्रहण करते, फलाहारका भोग दर्शनार्थी भक्तोंमें वितरण कर दिया जाता।

मोटरकारकी यात्रा

प्रारम्भमें महाराजश्री पैदल ही चलते थे। कभी आवश्यकता होनेपर नौकासे भी यात्रा करते थे, परंतु यान या किसी सवारीसे नहीं करते थे। आगे चलकर धर्म-रक्षार्थ जब सार्वजनिक जीवनमें महाराजश्रीका प्रवेश हुआ तब महाराजश्रीके संन्यास-गुरु ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य श्रीब्रह्मानन्दजी महाराज तथा अन्य लोगोंके विशेष आग्रह करनेपर महाराजने दूरकी यात्राके निमित्त मोटरपर चढ़ना स्वीकार कर लिया। इसीलिये वे रेल आदिके द्वारा कभी यात्रा नहीं करते थे। कभी-कभी उन्होंने वायुयानसे भी यात्रा की, परंतु बादमें वायुयानकी यात्रा भी बंद कर दी। कारण, उसमें सिगरेट आदि पीनेपर प्रतिबंध नहीं था। मोटरकारकी यात्रामें महाराजके नित्य-नियम तथा भजन आदिके निर्वाहमें स्वतन्त्रता रहती थी। वे गाड़ीको रोककर समयानुसार सब कार्य कर लेते थे। उनके नियमित कार्यक्रममें किसी प्रकारकी बाधा भी नहीं होती थी। इसलिये उन्होंने बादके दिनोंमें दूरकी यात्रा मोटरद्वारा ही की।

तुलसी-प्रसादकी विशेषता

तुलसी-प्रसादमें महाराजकी अनन्य आस्था थी। वे एकादशीके निर्जल-व्रतमें भी तुलसीदल ग्रहण करनेका निषेध नहीं करते। एक बार काशीमें श्रीवृन्दावनबिहारी-भवनमें महाराजश्रीके पास अनन्तश्री जगद्गुरु शंकराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज तथा पुरीपीठाधीश्वर शंकराचार्य स्वामी श्रीनिरञ्जनदेवजी महाराज ठहरे हुए थे। प्रातःकालीन पूजाके बाद पुरीपीठाधीश्वरने पेय पदार्थ (ठंढई)-का भगवान्‌को भोग लगाया तथा स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराजसे किंचित् स्वीकार करनेका आग्रह किया। पर उन्होंने स्पष्ट अस्वीकार कर दिया, कारण कि उनका भी यह नियम था कि वे दिनमें १२ बजे एक बार भिक्षा करते, इसके पूर्व कुछ भी नहीं लेते। पुरीके श्रीशंकराचार्यजीने विशेष आग्रह किया और कहा कि आप स्वीकार नहीं करेंगे तो मैं भी इसे ग्रहण नहीं करूँगा। वहाँ महाराजश्री भी बैठे थे तथा दोनों महात्मा अपनी बातपर अड़े थे। इसपर महाराजश्रीने यह निर्णय दिया कि इसमेंसे तुलसी निकालकर इन्हें दे दो।

तुलसी-प्रसाद लेनेसे आपकी और इनकी दोनोंकी बात पूरी हो जायगी। महाराजका यह निर्णय दोनोंने स्वीकार किया। स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराजको ठंढईमेंसे तुलसी-प्रसाद निकालकर दिया गया और उन्होंने महाराजश्रीकी बात मानकर उसे ग्रहण किया।

नियमकी प्रतिबद्धता

महाराजजीके जीवनमें नियमकी प्रतिबद्धता निरंतर थी। अधिक मात्रामें ज्वर इत्यादिके रहनेपर भी वे तीन बजेके पूर्व उठकर एक बार स्नान करके प्रातः पूजापर अवश्य बैठ जाते। भले ही अस्वस्थताके कारण अधिक देर न बैठ सकें तथा पुनः विश्राम करने लगें, परंतु उनका समयपर उठनेका नियम था। अस्वस्थताके कारण भी वे उठनेमें आलस्य-प्रमाद नहीं करते।

एक बार महाराजश्री विशेषरूपसे अस्वस्थ हो गये। पाँच दिनतक लगातार उनकी बाह्य-चेतना शून्य-सी रही। फिर भी वे अचेतावस्थामें भगवन्नाम एवं रामचरितमानसकी चौपाइयोंका उच्चारण करते रहे। केदारघाट-स्थित आवासमें उनकी आयुर्वेदिक चिकित्सा चलने लगी। छठे दिन हठात् उनकी चेतना लौट आयी। एकाएक स्वतः सर्वप्रथम उन्होंने यही कहा कि 'मेरी पूजा लगाओ।' उनकी वाणी सुनकर सेवकोंको आश्चर्य हुआ। पाँच दिनोंकी अचेतावस्थाके बाद अचानक वे बोल उठे—'मेरी पूजा लगाओ' यह आश्चर्य था। सेवकोंने कहा—'महाराज! आपके भगवान् तो पूजाके निमित्त नीचे मन्दिरमें विराज रहे हैं।' यह सुनकर उन्हें भी आश्चर्य हुआ और उन्होंने पूछा कि ऐसा क्यों? तब उन्हें उनकी अचेतावस्थाकी सब बातें बतायी गयीं। तब उन्हें अपनी अस्वस्थताका आभास हुआ। उसी समय तत्काल उन्होंने भगवान्‌को अपने पास मँगाया तथा अपने सांनिध्यमें ही किसी अन्य ब्राह्मणद्वारा पूजन सम्पन्न कराया। इस प्रकार वे अपनी चेतनावस्थामें अपने भगवद्विग्रहको स्वयं से दूर नहीं रख सकते थे।

एकमात्र भगवन्नामका सहारा और काशीका आश्रय

यह उस समयकी बात है जब पूज्य स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज अपना चातुर्मास्य काशीमें सम्पन्न कर रहे थे। एक दिन वे अपनी कुटीमें बैठकर कोई पुस्तक देख रहे थे। मैं भी उनके पास बैठा हुआ कुछ आध्यात्मिक प्रश्न पूछ रहा था। पूज्य स्वामीजी महाराज बीच-बीचमें समाधान करते जाते थे। उसी समय मेरे मनमें एक बात आयी और मैंने महाराजश्रीसे पूछा कि श्रीमद्भवद्गीतामें (९/२२) भगवान्‌ने यह कहा है—'जो व्यक्ति अनन्यभावसे मेरी भक्ति करता है और उपासना करता है, उसके योग (अप्राप्तकी प्राप्ति) और क्षेम (प्राप्तिके रक्षण)-का मैं यत्नपूर्वक वहन करता हूँ'—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

परंतु लोकमें इसके विपरीत बहुत सारे उदाहरण देखनेको मिलते हैं। जो परिवार पूर्णतः भगवद्विश्वासी हैं और जहाँ अनन्य भावसे भगवान्‌की पूजा, उपासना एवं कथा, सत्संग आदि चलते रहते हैं, उन परिवारोंमें भी कभी-कभी अनायास विपरीत परिस्थितियाँ देखकर आश्चर्य होता है। महाराजने मेरा आशय तो समझ ही लिया था। वे एक मिनट मौन रहकर बोले—'भाई! तुम्हारा यह प्रश्न तो अत्यन्त प्राचीन है। एक बार लक्ष्मणने महाराज श्रीरामसे कहा कि मैं दैवको समाप्त कर दूँगा।' लक्ष्मणकी बात सुनकर भगवान् राम हँसे और बोले—'लक्ष्मण! दैवको तुम समाप्त कर सकते हो, पर यह तभी कर सकते हो जब तुम्हें यह मालूम हो जाय कि यह दैव (प्रारब्ध) है।' वास्तवमें दैवकी जानकारी तो फल-बलसे ही होती है अर्थात् जब घटना घट जाती है तभी प्रारब्धका पता लगता है और व्यक्ति यह समझता है कि यह हमारा दैव था। यह सब चर्चा चल ही रही थी कि इसी बीच एक नवागन्तुक व्यक्ति वहाँ आकर बैठ गये। थोड़ी देर बाद उन्होंने महाराजजीसे निवेदन किया कि 'स्वामीजी! मेरे भोजनकी कोई व्यवस्था नहीं है।' तत्काल महाराजश्रीके मुखसे यह शब्द निकला कि 'भगवान्‌के नामका स्मरण करो, उनकी कृपासे ही इसकी व्यवस्था होगी।'—ऐसा कहनेके कुछ क्षण बाद महाराजश्री मेरी ओर मुख करके बोले—'देखो! मैं यह बात ऊपर-ऊपरसे नहीं भीतरसे कह रहा हूँ। इस संसारमें तो कोई तत्त्व है नहीं। किस क्षण क्या हो सकता है? इसे कोई जानता

नहीं। यदि कोई सार है तो वह है एकमात्र भगवन्नामका सहारा और दूसरा काशीका आश्रय।' इतना कहते-कहते स्वामीजी महाराज भाव-विह्वल हो गये। जिस समय महाराजद्वारा यह बात प्रस्तुत की गयी, उस समय उनकी भाव-भङ्गिमाओंसे मुझे ऐसा परिलक्षित हुआ मानो अपने जीवनकी साधनाओंका अनुभव और सम्पूर्ण शास्त्रों एवं सत्संगोंका सार उनकी इस वाणीसे प्राप्त हो रहा है।

वृन्दावनमें सत्संग

होलीके दिनोंमें फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षमें महाराजजी प्रतिवर्ष वृन्दावन जाते थे। वहाँ रमणरेतीमें धानुका-निवासमें रुकते तथा लगभग एक सप्ताह व्रजके भक्तोंको आनन्दकन्द सच्चिदानन्द व्रजेन्द्रनन्दन मदनमोहन श्यामसुन्दरकी प्रेममयी कथाका रसास्वादन कराते थे। वृन्दावनके रसिक भक्त-संत कथावाचक और विद्वद्गण महाराजजीकी कथा-सुननेके लिये पधारते। महाराजजी भी कथारसमें विभोर हो जाते। कभी-कभी तो भक्तिप्रेमरसमें वे इतना विह्वल हो जाते कि कथा कहनेकी स्थिति भी नहीं रह जाती।

रमणरेतीमें प्रभुपाद भक्तिवेदान्त स्वामीके द्वारा एक भव्य मन्दिरका निर्माण किया जा रहा था। जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय जगत्के सभी भक्तजनोंको रहनेकी तथा पूजा-पाठ करनेकी सुविधा दी गयी थी। वे लोग स्वामीजी महाराजसे उस मन्दिरका उद्घाटन कराना चाहते थे। जिसके लिये उनके प्रमुख शिष्यके द्वारा भक्ति-वेदान्त स्वामी प्रभुपादकी ओरसे साग्रह अनुरोध किया गया था। पर महाराजजीने स्वीकार नहीं किया और कहा—पहले सिद्धान्तपर विचार कर लेना चाहिये। आपकी संस्थाके द्वारा विदेशी जनोंके यज्ञोपवीत-संस्कार कराये जाते हैं तथा संन्यास आदि दिलाया जाता है। जबकि शास्त्रके द्वारा उनके कल्याणकी दृष्टिसे उन्हें ये सब करनेका अधिकार नहीं है, वे अधिक-से-अधिक नाम-कीर्तन एवं नाम-जपके ही अधिकारी हो सकते हैं। इस विषयपर महाराजश्रीने शास्त्रीय प्रमाण भी उनके समक्ष प्रस्तुत किये।

काशीमें निवासका निर्णय

मेरे पूज्य पिताजी और मेरे पूज्य ताऊजी दोनोंमें एक बार विवाद छिड़ गया। सन् १९५७ में श्रीकाशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें मेरा नाम एम.ए. (संस्कृत)-में लिखाया गया। उन दिनों मेरे पूज्य पिताजीकी इच्छा परिवारसहित काशीमें ही निवास करनेकी थी। जीवनयापनकी दृष्टिसे यहाँ व्यापार करनेकी योजना सोची जा रही थी। पूज्य ताऊजीने काशीमें व्यापार करनेका शास्त्रीय दृष्टिसे निषेध किया। शास्त्रीय प्रमाण भी प्रस्तुत किया। पूज्य पिताजी तथा ताऊजीका संयुक्त परिवार था। पूज्य पिताजीने ताऊजीसे काशीमें रहनेका आग्रह किया, पर वे यहाँ रहनेके लिये तैयार नहीं थे। उन्होंने यह शर्त रखी कि जो भी विद्वान् या संत-महात्मा अपने दैनिक जीवनयापनके कार्योंमें गङ्गाजलका प्रयोग करता हो, नलके जलका प्रयोग न करता हो—ऐसे किसी भी व्यक्तिसे इसका निर्णय कराया जा सकता है। इसके लिये ज्योतिष्पीठाधीश्वर शंकराचार्य स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराजको पंच माना गया। वे जो निर्णय कर देंगे वह दोनों पक्षोंको मान्य होगा। ताऊजीने व्यापार न करनेके पक्षमें अपना शास्त्रीय पक्ष प्रस्तुत किया तथा पिताजीने व्यापार करनेके पक्षमें अपना तर्क प्रस्तुत करते हुए कहा कि 'शास्त्रोंमें काशीवासकी सर्वोत्कृष्ट महिमा है, परंतु वैश्यके लिये भिक्षा-वृत्ति तो विहित है नहीं, जीवनयापनके लिये व्यापारके अतिरिक्त वैश्यके लिये और क्या हो सकता है? पूज्य स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराजने इसपर दो दिनोंतक विचार किया और अन्तमें यह मामला स्वामी श्रीकरपात्रीजीके पास भेज दिया और कहा इसका निर्णय उनसे ही कराना चाहिये। महाराजने भी दोनों पक्षोंको सुना और अन्तमें यह निर्णय दिया कि काशीवासके निमित्त जीवनयापनके लिये तथा भोग-विलासकी भावना बिना रखे अनासक्त-भावसे साधु-संतों-महात्माओं और भारतीय संस्कृतिकी सेवाको लक्ष्य बनाकर व्यापार करनेमें दोष नहीं होगा। महाराजने यह भी कहा कि काशीवासका तो इतना अधिक महत्त्व है, जिसके संबन्धमें शास्त्रोंमें यहाँतक लिखा गया है कि 'हाथ-पैर तोड़कर भी काशीमें निवास करते हुए मृत्युकी प्रतीक्षा करनी चाहिये।' अतः काशीवासके उद्देश्यसे जीवन-यापनके लिये

साधनरूपमें व्यापारका आश्रय वैश्य ले सकता है, परंतु अर्थोपार्जन भोग-विलासके लिये नहीं होना चाहिये।

काशीमें शरीर-त्यागका संकल्प

काशीमें महाराजश्रीकी अटूट श्रद्धा थी। वे यह मानते थे कि जन्म-जन्मान्तरकी साधनाओंके बाद भी त्याग-वैराग्य और तप आदि साधन-सम्पन्न योगियोंको जो वस्तु दुर्लभ है, वही 'मोक्ष' काशीमें शरीर त्यागने मात्रसे प्राप्त होता है। महाराजश्रीकी यह मान्यता थी कि काशीमें भगवान् विश्वनाथके द्वारा मुक्तिका सदाव्रत चलता है। वे कहा करते—जैसे कोई अभ्यागत किसी अन्न-सत्र अथवा मालपूआ, खीर, पूड़ी आदिके भण्डारकी पंक्तिमें बैठ जाय तो उसे मालपूआ आदि रुचिकर भोजन बिना प्रयासके स्वतः प्राप्त हो जाता है, इसी प्रकार भूतभावनके इस मुक्तिक्षेत्रमें जिसका वास हो जाय, वह अनायास ही जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त हो जाता है। इसलिये वे सदा काशीमें निवासके लिये कहते, कारण कि **मङ्गलं मरणं यत्र......**।

महाराजश्रीका यह नियम था कि वे प्रतिवर्ष चातुर्मास्य काशीमें ही करते, कारण यति-संन्यासी चातुर्मास्यकालमें दो मासतक किसी भी परिस्थितिमें एक स्थानकी सीमा पार नहीं करते अर्थात् नगरकी सीमासे बाहर दूसरे स्थानपर नहीं जाते। इसलिये पिछले २०-२५ वर्षोंमें दूसरे स्थानपर चातुर्मास्यके आग्रहको महाराजजीने कभी स्वीकार नहीं किया, सदैव वाराणसीमें ही श्रावण और भाद्रपद—दो मास चातुर्मास्यके रूपमें व्यतीत किया। वैसे उन्होंने स्पष्टरूपसे अपने ब्रह्मचारीको यह आदेश भी दे रखा था कि कहीं भी किसी समय मेरे अस्वस्थ होनेपर गाड़ी तत्काल काशीकी ओर मोड़ देना। उनका यह मानसिक संकल्प था कि शरीर-त्याग काशीमें ही करना है। काशीमें भी केदारखण्डमें शरीर-त्यागका वे विशेष महत्त्व मानते थे।

शास्त्रानुसार सम्पूर्ण काशीमें तीन खण्ड हैं—विश्वनाथखण्ड, ॐकारखण्ड और केदारखण्ड। नक्शेमें सबकी सीमाएँ अलग-अलग दिखायी गयी हैं। इन सभी सीमाओंमें शरीर-त्यागमात्रसे मुक्ति प्राप्त होती है। परंतु विश्वनाथखण्ड और ॐकारखण्डमें शरीर छूटनेसे मोक्षसे पूर्व पापोंकी निवृत्तिके लिये

भैरवी यातना भोगनी पड़ती है। यह अत्यधिक कठिन यातना है, परंतु केदारखण्डमें शरीर छूटनेसे भैरवी यातना भी नहीं भोगनी पड़ती। ढुण्ढिराज-गणेशजी केवल भयादोहनके द्वारा प्राणीके पापोंकी निवृत्ति कर देते हैं और वह मुक्त हो जाता है। इसीलिये महाराजश्रीने काशीमें केदारेश्वर महादेवके ठीक बगलमें गङ्गातटपर एक स्थान प्राप्त किया, जिसे उन्होंने 'वेदशास्त्रानुसंधानकेन्द्र'के नामसे स्थापित किया, पर इसे आजकल 'करपात्री-धाम' कहा जाता है। इस स्थानपर गङ्गाकी ओर एक मन्दिरकी स्थापना की गयी, जिसमें महाराजश्रीने अपने सभी आराध्य देवोंको संस्थापित किया। नर्मदासे प्राप्त शुभ्र वर्णके सुन्दर शिवलिङ्ग मन्दिरके मध्यमें स्थापित किये गये। इनकी जलहरीमें चारों दिशाओंमें गणेश, दुर्गा (पार्वती), विष्णु और सूर्य भगवान्की स्थापना की गयी। सामने सिंहासनपर मध्यमें श्रीराम-पञ्चायतन, भगवान् श्रीराधाकृष्ण, भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी स्थापना हुई। इस प्रकार महाराजश्रीने मन्दिरमें पञ्चदेवोंको संस्थापित किया तथा यह नियम बनाया कि कम-से-कम १७ पाव अन्नका भोग प्रतिदिन एक समय लगाया जाय। भोगके साथ-साथ बलिवैश्वदेव एवं गोग्रास आदिकी शास्त्रविहित प्रक्रिया भी पूरी की जाय। साथ ही एक व्यक्तिका भोजन गोमाताको तथा एक व्यक्तिका भोजन गङ्गा माताको समर्पित किया जाय।

इस स्थानके संबंधमें महाराजश्रीका आन्तरिक भाव यह भी था कि शरीर-त्याग केदारखण्ड-स्थित गङ्गाके तटपर इस स्थानमें ही किया जाय। शरीर-त्यागके क्षणोंमें शास्त्रद्वारा निर्धारित समस्त विधियोंपर महाराजका पूर्ण ध्यान था और वे उसे आवश्यक भी मानते थे। शास्त्रका यह निर्देश कि आकाशमें अर्थात् भूमितलसे ऊपर दूसरी मंजिल अथवा मचान आदिपर मृत्यु नहीं होनी चाहिये। इस बातपर महाराजका पूर्ण ध्यान था। एक बार वे किसी यात्राके समय मार्गमें विशेष अस्वस्थ हो गये, तत्काल महाराजजी काशी केदारघाट-स्थित भवनमें ले आये गये। वहाँ उन्होंने इसी दृष्टिसे स्थान उपयुक्त न होनेपर भी नीचेके तलमें ही रहना स्वीकार किया। एक बार महाराजजीने मुझे यह भी आदेश दिया था कि ऊपरके तलपर, जिस कमरेमें महाराज निवास करते थे, वहाँ एक व्यक्तिके लायक चौकी बना

दी जाय, जो नीचेके तलसे ऊपरके तलतक ठोस रहे। भीतर पोल न रहे। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि महाराजकी यह सब अन्तिम समयकी पूर्व व्यवस्था है। इसी बीच काशीके एक सम्मानित पण्डित किसी दिन महाराजश्रीसे मिले और उन्होंने शास्त्रमें प्रमाणित एक श्लोक महाराजश्रीको दिखलाया। जिसका आशय यह था कि काशीमें यदि ऊपरके तलमें भी देहान्त हो जाय तो कोई दोष नहीं है। इस प्रमाणको देखनेके बाद ऊपरके तलमें शरीर न त्यागनेकी बात महाराजके मनसे निकल गयी। उन्होंने यह मान लिया कि काशीमें शरीर कहीं भी छूटे तो कल्याणमें कोई बाधा नहीं।

एक बार स्वामी श्रीस्वरूपानन्दजीने स्वामीजी महाराजके पास शास्त्रोंमें प्रमाणित एक श्लोक लाकर दिखाया, जिसका आशय था कि सूर्योदयके बाद और सूर्यास्तके पूर्व रुद्राक्षकी मालापर देवीका जप करनेसे लक्ष्मीकी हानि होती है। अत: दिनमें रुद्राक्षकी मालापर भगवतीका जप नहीं करना चाहिये। महाराजने शास्त्र-प्रमाण देखकर इसे भी स्वीकार कर लिया। एक दिन इसी संदर्भमें मेरे समक्ष श्रीमहाराजजीने कहा—निरन्तर शास्त्राध्ययन आदि होते रहनेपर भी शास्त्रकी कोई नयी बात अभी भी सामने आ जाती है जो पहले जानी हुई नहीं है। इसी क्रममें मैंने महाराजश्रीसे पूछा कि गायत्री-मन्त्रका जप सूर्योदयके बाद दिनमें रुद्राक्षकी मालापर किया जा सकता है या नहीं? कारण, गायत्री मन्त्र भी तो देवी-मन्त्र ही है। इसपर महाराजजीने उत्तर दिया कि गायत्री मन्त्रके द्वारा अपने इष्टदेवका ध्यान होता है, इसलिये इसका जप रुद्राक्षकी मालापर करनेमें कोई आपत्ति नहीं है।

भावके भूखे हैं भगवान्

श्रीमहाराजजीने बताया कि भगवान्के मन्दिरमें अथवा पूजामें भोगकी व्यवस्था अवश्य करनी चाहिये। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि भावके बिना भगवान् भोग भी स्वीकार नहीं करते। कारण, वास्तवमें भगवान्को किसी वस्तुकी आवश्यकता तो है नहीं, वे तो प्रेम और भावनाके भूखे हैं। इसलिये जो भी सामग्री बने वह सम्पूर्ण सामग्री भगवान्के सामने रखनी चाहिये और भोग लगाते समय मानसिक रूपसे यह भावना करनी चाहिये कि मैं अपने प्रभुको छप्पन प्रकारके व्यञ्जनोंका भोग निवेदन कर रहा हूँ,

पूज्य स्वामीजी गम्भीर चिन्तन-मुद्रा में

पूज्य स्वामीजी गम्भीर चिन्तन-मुद्रा में
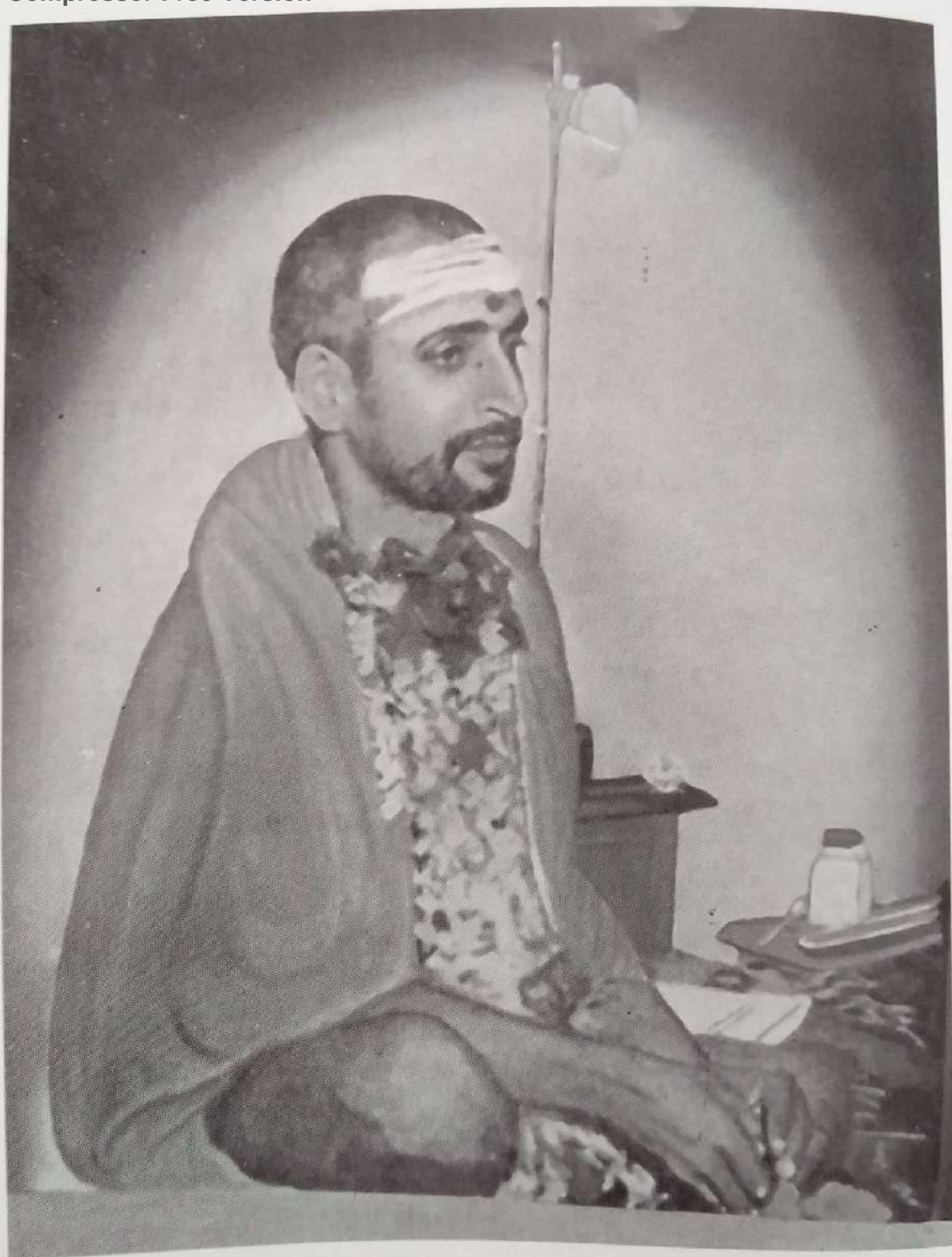
विलक्षण भाव में निमग्न महाराजश्री

मीरघाट स्थित श्री काशी विश्वनाथ मन्दिर में राधेश्याम खेमका
से वार्तालाप करते हुए स्वामी करपात्री जी
पीछे खड़े हैं सपत्नीक श्रीहनुमानप्रसाद धानुका

ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य परम वीतराग महात्मा
ब्रह्मलीन स्वामी कृष्णबोधाश्रमजी महाराज

अनन्त श्री स्वामी करपात्रीजी—अपने भक्तजनों के साथ

(दाहिने) जगद्गुरु शंकराचार्य ब्रह्मलीन स्वामी श्री निरंजनदेव तीर्थ (बायें) जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्री स्वरूपानन्दजी सरस्वती

ऊर्ध्वाम्नाय काशीस्थ आदि सुमेरुपीठाधीश्वर
जगद्गुरु शङ्कराचार्य ब्रह्मलीन स्वामी महेश्वरानन्दजी सरस्वती

स्वामी करपात्रीजी द्वारा विरचित 'वेदार्थपारिजात' के उद्‌घाटन के अवसर पर

(बायें से) श्री हनुमानप्रसादजी धानुका, काशिराज श्री विभूतिनारायण सिंह, श्री सत्येन्द्रकुमार गुप्त (सम्पादक, आज) आचार्य बदरीनाथजी शुक्ल (कुलपति, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय) तथा आचार्यश्री पट्टाभिराम शास्त्री
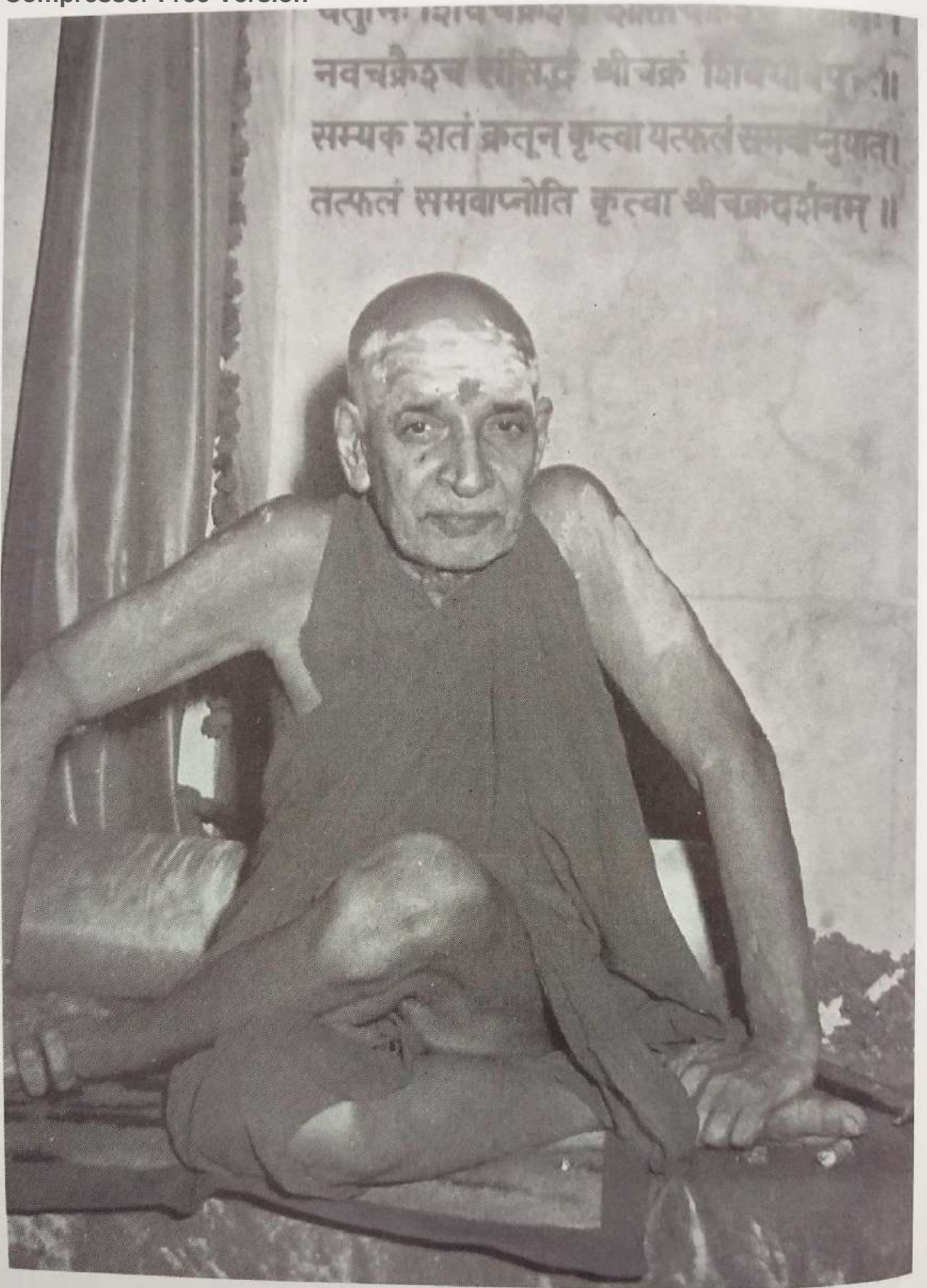
अनन्त श्री स्वामी करपात्री जी महाराज विचार-मुद्रा में

अनन्त श्री स्वामी करपात्री जी महाराज विचार-मुद्रा में

इसी क्रममें विभिन्न भोग-सामग्रियोंको मानसिक रूपसे अपने प्रभुके समक्ष निवेदित करना चाहिये। इसीके साथ महाराजश्रीने भावनाकी एक दूसरी प्रक्रिया प्रस्तुत करते हुए बताया कि भोग लगाते समय अत्यन्त दीनभावसे अपने प्रभुसे यह प्रार्थना करनी चाहिये कि 'हे नाथ! आपने शबरीके बेरको ग्रहण किया, सुदामाके तंडुलको स्वीकार किया और विदुरकी पत्नीके केलेके छिलकेको भी प्रेमपूर्वक खाया तो फिर मेरे इस तुच्छ भोगको भी स्वीकार करें।' इस प्रकार दैन्यभावसे प्रार्थना करके प्रभुको आरोगवाना चाहिये। इस तरह भावनापूर्वक भोग लगानेसे ही भगवान् उस भोगको ग्रहण करते हैं।

भोगके साथ राग

एक संदर्भमें महाराजजीने कहा कि मन्दिरमें भोगके साथ रागकी भी व्यवस्था करनी चाहिये। मैंने पूछा—'महाराज! राग क्या है?' महाराजने बताया कि जैसे भगवान्‌को प्रेमपूर्वक भोग लगाया जाता है, वैसे ही प्राचीन मन्दिरोंमें संगीत-स्वरोंमें भजन, कीर्तन और स्तुति भी सुनायी जाती है। विशेष-कर वल्लभ-सम्प्रदायके मन्दिरोंमें तो प्रायः यह व्यवस्था रहती ही है। महाराजने मुझसे कहा कि ऐसा कोई भजनानन्दी संगीतज्ञ जो काशीवासकी दृष्टिसे रहना चाहे तो उसे केदारघाटके मन्दिरमें रखा जा सकता है। जिसके द्वारा राग-रागिनीकी सेवा भगवान्‌के समक्ष नियमित रूपसे चलती रहे। इसीलिये मन्दिरोंमें भगवान्‌के प्रसादके निमित्त 'भोग-राग' शब्दका प्रयोग होता है।

काशीकी महिमा

काशीकी महिमाका वर्णन करते हुए वे सदा कहते कि—

'असारे खलु संसारे सारमेतच्चतुष्टयम्।
काश्यां वासः सतां सङ्गो गङ्गाम्भः शम्भुसेवनम्॥'

इस असार संसारमें चार बातें ही सारभूत हैं—

(१) गङ्गाका जल—गङ्गाका एक विन्दु जल भी मनुष्यको तारने एवं उसका कल्याण करनेमें समर्थ है। अतः दैनिक जीवनमें जिन्हें गङ्गाजल उपलब्ध है, उनके सौभाग्यका कहना ही क्या? गङ्गाकी यह उत्तरवाहिनी धारा काशीमें ही उपलब्ध है।

(२) सत्पुरुषोंका संग—जीवनको ऊपर उठानेके लिये सत्संगकी बड़ी महिमा है। संत, महात्मा और सत्पुरुषोंकी संगति प्राप्त हो जाय तो इसको परम सौभाग्य मानना चाहिये। काशीमें यह परम सुलभ है।

(३) काशीका वास—भूतभावन भगवान् विश्वनाथकी पुनीत नगरी काशीमें निवास करना अत्यधिक महत्त्वकी बात है। जन्म-जन्मान्तरके तप एवं साधनासे जो गति योगीश्वरों और मुनीश्वरोंको नहीं प्राप्त होती-दुर्लभ है, वह केवल काशीवाससे व्यक्तिको प्राप्त हो जाती है।

(४) भगवान् शिवका पूजन—जीवनमें भगवदाराधनकी मुख्य महिमा है। काशीमें साक्षात् सदाशिव भूतभावन भगवान् विश्वनाथ विराजते हैं। अतः काशीवासियोंको स्वाभाविक रूपसे भगवान् विश्वेश्वरके अर्चन-पूजनका अवसर प्राप्त है। अतः (१) गङ्गाका जल, (२) सत्पुरुषोंका संग, (३) काशीका वास और (४) भगवान् शिवका पूजन—ये चारों ही सारभूत बातें काशीमें उपलब्ध हैं, अन्यत्र नहीं।

पञ्चक्रोशी परिक्रमा

अन्तिम वर्षोंमें महाराजश्री प्रतिवर्ष काशीकी पञ्चक्रोशी यात्रा भी करते। उनके साथ सैकड़ों-हजारोंकी संख्यामें भक्तमण्डली जाती। मार्गमें यात्राके क्रममें **'हर हर महादेव शम्भो काशी विश्वनाथ गङ्गे'** यह कीर्तन चलता रहता। इसके अतिरिक्त मार्गमें वार्तालाप आदि करना अमूल्य समयका अपव्यय माना जाता था। इसके साथ ही वे जहाँ ठहरते वहाँ काशी-रहस्य और काशीखण्डकी कथा एवं सत्संगका कार्यक्रम भी चलता। उनका यह विश्वास था कि—

अन्यदेशे कृतं पापं वाराणस्यां विनश्यति।
वाराणस्यां कृतं पापमन्तर्गेहे विनश्यति॥
अन्तर्गेहे कृतं पापं पञ्चक्रोश्यां विनश्यति।
पञ्चक्रोश्यां कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति॥

अन्यत्र कहीं भी किया हुआ पाप वाराणसीमें नष्ट हो जाता है, किंतु वाराणसीमें किया गया पाप अन्तर्गृहकी यात्रासे समाप्त होता है। अन्तर्गृहकी यात्राके क्रममें यदि कोई पाप बन जाय तो उसका विनाश पञ्चक्रोशी-यात्रासे हो जाता है, किंतु पञ्चक्रोशी यात्राके क्रममें किसीसे कोई पाप बन जाय तो वह वज्रलेप हो जाता है। इसीलिये वे साथ चलनेवाले लोगोंको निरन्तर सावधान रखते कि मार्गमें क्रोध, परनिन्दा, असत्य-भाषण तथा किसीके प्रति कोई दुष्टभाव आदि पापकर्म न बन जाय तथा नियम-संयमका पूर्ण पालन होता रहे। काशीको अखण्ड ज्योतिर्लिङ्ग, साक्षात् भगवान् शिवका विग्रह मानकर इसकी परिक्रमा की जाय। यात्राक्रममें काशीकी सीमाके भीतर मल-मूत्रादिका त्याग भी वर्जित रहता। इसलिये पञ्चक्रोशी-मार्गमें चलते समय दाहिनी ओर काशीकी सीमा मानी जाती है। जिधर थूकना, मल-मूत्रका त्याग करना एवं स्नानादि करना भी वर्जित रहता। प्राचीनकालसे मार्गके पड़ावोंपर जो भी धर्मशालाएँ बनी हैं, वे सभी सड़कके बायीं ओर स्थित हैं, जहाँ परिक्रमा करनेवाले यात्री ठहते हैं तथा स्नानादि करते हुए अपना दैनिक कृत्य सम्पन्न करते हैं। इस प्रकार काशीमें महाराजश्रीकी अविचल आस्था थी। इसके साथ ही काशीवास करनेवालोंके लिये वे पञ्चक्रोशी-परिक्रमा करना भी आवश्यक मानते थे।

ज्योतिष्मत्कल्प

एक बार किसी सज्जनने महाराजको ज्योतिष्मत्कल्पकी विधि लाकर दी और बताया कि उत्तराखण्डके किन्हीं महात्मासे उन्हें प्राप्त हुआ है। वह एक वर्षका प्रयोग था। उसकी फलश्रुति अत्यन्त आध्यात्मिक थी, जो उस कल्पको करेगा वह त्रिकालदर्शी-सर्वद्रष्टा योगी, सर्वज्ञ और विष्णुस्वरूप होगा। इस प्रकारकी कई चमत्कारी बातें फलश्रुतिमें लिखी थीं। महाराजजीने कहा कि शास्त्रमें इसका वर्णन मिलनेपर ही मैं इसे कर सकता हूँ। खोज की गयी और अन्ततोगत्वा शास्त्रोंमें इसका वर्णन भी प्राप्त हुआ। महाराजने कल्प करनेका निश्चय कर लिया। प्रमुख वैद्योंकी गोष्ठी बुलायी गयी। कल्पकी विधि और प्रक्रियापर विचार-विमर्श हुआ। कुछ वैद्योंने इस कार्यमें अपनी असमर्थता प्रकट की; क्योंकि कल्पविधिमें कुछ समयतक घोर मूर्च्छाका प्रकरण था। वैद्योंने इस सम्बन्धमें अपनी अनुभवहीनताके

कारण यह समझा कि यदि विधिवशात् महाराजजीकी चेतना वापस न लौटी तो आयुर्वेदपर बड़ा भारी कलंक लग जायगा। पर महाराजका निश्चय तो दृढ़ था, उन्होंने कुछ विशिष्ट वैद्योंकी सहायतासे अपनी जिम्मेदारीपर इसे करनेका निर्णय ले लिया। नवीन श्रीकाशी-विश्वनाथ-मन्दिर, विश्वनाथ-घाट (मीरघाट)-में गङ्गातटपर कल्पके लिये एक विशेष प्रकारकी कुटीका निर्माण कराया गया। जंगलोंमें ज्योतिष्मतीलताकी खोज प्रारम्भ हुई। जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीस्वरूपानन्दजी महाराज उन दिनों संन्यासीरूपमें महाराजके निकटतम लोगोंमें थे, उन्होंने जंगलोंमें तथा गाँवोंमें जाकर ज्योतिष्मतीका पता लगाया और फिर उसका अर्क निकाला गया। कल्पविधिके अनुसार उस कुटीमें महाराजने मौन होकर निर्जन-एकान्तवास किया तथा विधिके अनुसार ज्योतिष्मती-अर्कका सेवन भी प्रारम्भ कर दिया। आहाररूपमें एक बार तिन्नीका चावल लेते। इन दिनोंमें महाराजजीसे किसीका मिलना सम्भव नहीं था। कल्पके क्रममें कुछ ही दिनों बाद महाराजजीको मूर्च्छाकी आशंका प्रारम्भ हो गयी। उन्हें स्वतः यह आभास होने लगा कि आगे क्रम चलनेपर मूर्च्छा होनी निश्चित है। इन आशंकाओंसे अवगत होनेपर वैद्योंने विचार-विमर्शकर यह निर्णय लिया कि सर्वप्रथम इस कल्पका प्रयोग महाराजके साथ करना उचित नहीं है। अतः सबने एक स्वरसे आगे कल्प न चलानेका आग्रह किया। अन्ततोगत्वा महाराजने भी सबकी प्रार्थना स्वीकार कर ४० दिनोंतक कल्पका प्रयोग करनेके बाद कल्प-कुटीसे बाहर आ गये। यह महाराजश्रीका एक विलक्षण प्रयोग था। उन दिनों इस प्रयोगके कई संस्मरणात्मक अनुभव भी महाराजजीने सुनाये।

शास्त्र-रक्षामें तत्पर

महाराजजी सबके कल्याणके लिये शास्त्रको ही प्रमाण मानते थे। इसलिये उनके जीवनका सम्बल था—'शास्त्रीय सिद्धान्तोंकी रक्षा।' जीवन-पर्यन्त निर्भीकतापूर्वक उन्होंने इसका निर्वाह भी किया। शास्त्रकी रक्षाके लिये सरकारके लाठी-डंडे तथा गोलियोंकी भी उन्होंने कभी परवाह नहीं की। तत्कालीन 'हिन्दू कोड बिल' और 'गोहत्या' के विरोधमें उन्होंने कारागारकी कठिन यातनाओंको भी सहन किया। उन दिनों गांधीजीके

स्पृश्यता-निवारण-आन्दोलनके कारण देशमें तथा समाजमें स्पर्शास्पर्शकी भावना समाप्त होने लगी। सरकारकी ओरसे मन्दिरोंके गर्भ-गृहमें हरिजनोंका प्रवेश आन्दोलनके रूपमें कराया जाने लगा। देशमें ऐसा वायुमण्डल और वातावरण बन गया कि कोई व्यक्ति इन सबका विरोध करनेका साहस भी नहीं करता। महाराजश्रीने सनातनियोंको संगठित कर शास्त्रानुसार अशास्त्रीय बातोंका विरोध सार्वजनिक रूपसे करना प्रारम्भ कर दिया। इस कठिन समयमें सनातनधर्मियोंको धर्मकी रक्षामें स्वामीजीके नेतृत्वका सम्बल प्राप्त हो गया।

सनातनधर्म-विजय-महोत्सव

स्वामी दयानन्द सरस्वतीके निर्वाणके १०० वर्ष पूरे होनेपर आर्य-समाजने उनका शताब्दि-समारोह मनाया और यह घोषणा की कि स्वामी दयानन्दके अनुयायी आर्यसमाजी विद्वान् शास्त्रार्थमें, दिग्दिगन्तमें विजय करते हुए काशी पधार रहे हैं। यहाँ अवतारवाद, मूर्तिपूजा और श्राद्धादि रूढ़ियोंका खण्डन करेंगे जो चाहें उनसे शास्त्रार्थ कर सकते हैं। महाराजश्री इन चुनौतियोंको कब सहन कर सकते थे। उन्होंने तुरंत इस चुनौतीको स्वीकार करते हुए कहा कि धार्मिक क्षेत्रोंमें भी पञ्चशीलका सिद्धान्त मानना चाहिये। अपनी-अपनी आस्था-मान्यता और विश्वासके अनुसार सबको अपना धार्मिक कार्य सम्पन्न करनेका अधिकार है। पर किसीके धर्ममें हस्तक्षेप और आक्रमणको कभी सहन नहीं किया जा सकता, अतः उसका प्रतिकार किया जायगा और सिद्धान्तकी रक्षाके लिये उन्होंने शास्त्रार्थ करना भी स्वीकार किया। यह बात सारे देशमें फैल गयी। देशके कोने-कोनेसे संत-महात्मा, आचार्य और विद्वान् काशी पधारने लगे। सबको यह विश्वास था कि स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराजके रहते शास्त्रार्थमें कभी सनातनधर्मी पराजित नहीं हो सकते। आर्यसमाजके पंडालके निकट ही 'सनातन-धर्म-विजय-महोत्सव' का भी एक विशाल पंडाल बना। प्रारम्भमें तो उस पक्षके लोग शास्त्रार्थके लिये तैयार नहीं हुए, बादमें उनमेंसे कुछ लोगोंने शास्त्रार्थका प्रयास किया, पर वे महाराजके समक्ष शास्त्रार्थमें टिक कहाँ सकते थे। अन्तमें महाराजश्रीने निष्कर्ष-रूपमें शास्त्रीय सिद्धान्तोंका प्रतिपादन और सभी प्रश्नों एवं शंकाओंका समाधान प्रस्तुत किया। काशीकी सड़कोंपर, गलियोंमें, घरोंमें सब ओर

शास्त्रार्थकी ही चर्चा चलती रहती। सात दिनोंतक यह विचित्र समाँ बँधी रही। यह महाराजके जीवनकालका एक ऐतिहासिक आयोजन था।

महाराजजीका यह स्वभाव था कि वे शास्त्रके विरुद्ध कुछ भी सुनना नहीं चाहते थे। कोई कितना भी निकटतम व्यक्ति क्यों न हो, यदि वह शास्त्रीय सिद्धान्तोंके विरुद्ध कुछ कहता है या लिखता है तो महाराज तत्काल उसका खण्डन करते और उस बातका युक्ति और तर्कसहित शास्त्रके पक्षमें उत्तर भी देते।

आक्षेपोंके समाधानमें ग्रन्थ-रचना

कुछ विशिष्ट व्यासगणोंने एक बार महाराजश्रीको कामिल बुल्केकी लिखी हुई 'रामकथा' लाकर दी तथा कामिल बुल्केद्वारा विभिन्न रामायणोंका संदर्भ देकर भगवान् राम और भगवती सीतापर जो आक्षेप किये गये थे, उस ओर ध्यान आकृष्ट किया। तब महाराजजीने तत्काल उन सभी आक्षेपोंका उत्तर लिखा तथा जिन रामायणोंका संदर्भ बुल्केने दिया था, उन सभी रामायणकी पुस्तकोंको देखकर रामायणसे सम्बन्धित जो भी शंकाएँ उपलब्ध थीं, उन सबका निराकरण एवं समाधान 'रामायण-मीमांसा' नामक पुस्तक लिखकर किया। इसी प्रकार आचार्य रजनीशकी 'सम्भोगसे समाधिकी ओर' तथा 'समाजवाद और पूँजीवाद' पुस्तक किसीने महाराजके हाथमें दे दी। महाराजजीने उसे पढ़ा और तत्काल उसका उत्तर लिखे बिना वे रह नहीं सके। बादमें उन्होंने मुझसे यह कहा कि अब मैं इनकी कोई पुस्तक नहीं देखूँगा, क्योंकि इन सबके उत्तर देनेमें व्यर्थ समय बर्बाद होता है। शास्त्रीय सिद्धान्तोंके विपरीत देशभक्ति, राष्ट्रवाद और राजनीतिसे सम्बन्धित विचारधाराओंका खण्डन किये बिना महाराज रह नहीं सकते थे। इस सम्बन्धमें स्वातन्त्र्य वीर सावरकर तथा गुरु गोलवलकरजीके विचारोंका महाराजश्रीने 'विचारपीयूष' नामक ग्रन्थ लिखकर खण्डन किया है।

धर्मके प्रचार-प्रसारमें गीताप्रेसके योगदानकी चर्चा

धर्मके प्रचार-प्रसार और उसकी रक्षाके लिये महाराजकी चिन्ता स्वाभाविक थी। सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका तथा भाईजी

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके देहान्तके बाद कुछ दिनोंके लिये गीताप्रेसके कार्योंमें शिथिलता आने लगी थी, पुस्तकोंका अभाव होने लगा था। बाजारमें अधिक मूल्यमें गीताप्रेसकी पुस्तकें बिकने लगीं। एक दिन स्वामीजी महाराजने मुझसे कहा—'तुमसे कुछ आवश्यक बात करनी है।' महाराजकी बात सुनकर मैं थोड़ा गम्भीर हो गया और मैंने महाराजसे कहनेके लिये निवेदन किया। महाराजश्रीने कहा—'मैं सुनता हूँ कि आजकल गीताप्रेसकी स्थिति ठीक नहीं है। इस संस्थाके द्वारा धर्मका बहुत बड़ा कार्य हुआ है, उधर तुम्हें ध्यान देना चाहिये।' मैंने उत्तरमें कहा—'महाराज! मैं क्या ध्यान दे सकता हूँ। वहाँ तो एक ट्रस्ट बना हुआ है, जो वहाँके कार्यका संचालन करता है। मेरा तो कोई सम्पर्क है नहीं।' इसपर महाराजने कहा कि नहीं, तुम चाहोगे तो ध्यान दे सकते हो। तबसे मेरे मनमें गीताप्रेसके कार्योंमें-लगावमें वृद्धि होने लगी। इस प्रकार गीताप्रेसके कार्योंमें महाराजका अत्यधिक स्नेह एवं अनुराग था। वे कहते थे कि सनातनधर्मके प्रचार-प्रसार एवं सुरक्षामें गीताप्रेसका बड़ा योगदान है। अत: इस संस्थाको उन्नतिके शिखरपर पहुँचना चाहिये और इसकी सुरक्षा होनी ही चाहिये।

एक बार प्रसंगवश महाराजने कहा कि जब जयदयालजी और भाईजी थे तो वे मुझसे मिलते थे और उन्हें शास्त्रीय सिद्धान्तकी दृढ़ताके लिये डाँटता-फटकारता रहता था, फिर भी वे लोग बराबर मेरे पास आते थे और परामर्श करते थे। परंतु अब तो वहाँ कोई पूछनेवाला ही नहीं है, किसको क्या कहा जाय।

इन्हीं दिनों एक बार महाराजने किसी प्रसंगमें कहा कि इस समय गीताप्रेसमें शास्त्रको समझनेवाले और जाननेवाले केवल स्वामी रामसुखदासजी ही हैं। जब स्वामी रामसुखदासजी महाराज 'कल्याण'के सम्पादक बने तो महाराजश्रीको अत्यधिक प्रसन्नता हुई और उन्होंने कहा—'अच्छा हुआ कि उन्होंने 'कल्याण' को सँभाल लिया, और जब वे हटे तो महाराजश्रीको कष्ट हुआ। उन्होंने कहा 'वे क्यों हट गये, उन्हें तो 'कल्याण'का सम्पादक रहना चाहिये था।'

पूज्य सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका तथा भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके प्रति महाराजश्रीके हृदयमें अत्यधिक स्नेहका भाव था। उन्होंने एक

बार सेठजीके संबंधमें किसी प्रसंगमें कहा कि जयदयालजी संत थे। वे बाहर-भीतरसे एक थे। उनके-जैसा सहिष्णु होना बहुत कठिन है। भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके लिये भी उन्होंने एक बार कहा कि वे पूर्ण धर्मनिष्ठ, चतुर, विचारक और भक्त-हृदय थे।

इस प्रकार महाराजश्रीका हृदय गीताप्रेसके धर्मकार्योंमें और उसके प्रहरी कार्यकर्ताओंके साथ संलग्न था।

संन्यास-धर्मकी दीक्षा प्राप्त करनेके अधिकारी

ऋषिकेशकी झाड़ियोंमें परमार्थ-निकेतनकी पहाड़ीपर एक साधु स्वामी शंकरानन्दजी रहते थे। उन्होंने स्वामी अखण्डानन्दजीसे संन्यास ग्रहण किया था। पूर्वाश्रममें वे वैश्य कुलके थे। वे एक प्रबुद्ध साधक थे। निरन्तर भगवद्भजन और स्वाध्यायमें संलग्न रहते थे। शास्त्रान्वेषणका उन्हें शौक रहता था। महाराजश्री जब कभी ऋषिकेश पधारते थे तो वे घंटों उनके पास जाकर शास्त्र-संबन्धी अपनी शंकाओंका समाधान करते। एक बार स्वामी शंकरानन्दजीने मुझसे कहा कि 'यदि स्वामी श्रीकरपात्रीजीसे मेरी पहले मुलाकात हो जाती तो मैं संन्यास कभी ग्रहण नहीं करता। स्वामी करपात्रीजी शास्त्रीय दृष्टिसे ब्राह्मणेतरको संन्यास ग्रहण करनेका अधिकारी नहीं मानते। उनकी दृष्टिसे लिङ्ग-संन्यास अर्थात् संन्यासकी दीक्षा ग्रहण करनेका अधिकार ब्राह्मणको ही है। ब्राह्मणेतर जन भी ज्ञानमार्गमें प्रविष्ट होकर संन्यास-धर्मकी साधना तो कर सकते हैं और इसका लाभ भी उन्हें प्राप्त होगा, परंतु संन्यासकी दीक्षा तथा संन्यासी-वेश आदि धारण नहीं करना चाहिये।'

एक बार स्वामी शंकरानन्दजीका एक पत्र मुझे वाराणसीमें मिला। जिसमें उन्होंने कुछ अपनी समस्या लिखी। महाराजश्रीसे उसका उत्तर माँगा। उन्होंने लिखा कि 'वे भण्डार एवं क्षेत्रसे भिक्षा ग्रहण करते हैं, परंतु वहाँकी अपवित्रता आदि त्रुटियोंको देखकर उनकी इच्छा होती है कि वे स्वयं अपना भोजन बना लेवें। क्या वे ऐसा कर सकते हैं?' ऐसा उन्होंने महाराजश्रीसे पूछा था। महाराजश्रीने उत्तर दिया कि 'संन्यासीको अग्निस्पर्शका अधिकार नहीं है। अतः स्वयंपाकी होनेका समर्थन नहीं किया जा सकता। उन्हें तो भिक्षा ही ग्रहण करनी चाहिये।'

नामजपसे समस्याका समाधान

कुछ समय बाद स्वामी शंकरानन्दजीका एक दूसरा पत्र मिला। जिसमें उन्होंने नव-विवाहिता भक्त महिलाकी समस्या लिखकर भेजी। उस महिलाका विवाह कुछ ही समय पूर्व हुआ था। वह जिस व्यक्तिसे विवाह करना चाहती थी, उसके अभिभावकोंने उससे विवाह न कर किसी दूसरे व्यक्तिसे जो इंजीनियर थे तथा सौम्य प्रकृतिके थे, विवाह कर दिया तथा उनसे उसे किसी प्रकारकी असुविधा भी नहीं थी। परंतु वह महिला कहती थी कि वह व्यक्ति जिससे वह विवाह करना चाहती थी, उसके मनसे निकलता नहीं है। सत्संग आदि विचारधाराओंसे युक्त होनेके कारण वह यह भी समझती थी कि किसी अन्य पुरुषकी स्मृति उसके अकल्याणका ही कारण बनेगी। परंतु उस व्यक्तिको भूलना उसके वशकी बात न थी। उस महिलाने उसका उपाय स्वामी शंकरानन्दजीसे पूछा और शंकरानन्दजीने पत्रद्वारा इसका समाधान महाराजश्रीसे जानना चाहा। महाराजश्रीको मैंने पत्र पढ़ा दिया। उन्होंने यह उत्तर दिया कि उस महिलाको निरन्तर नामजपका साधन करना चाहिये। चलते-फिरते, उठते-बैठते सब समय नामजप करनेसे यह बात मनसे निकल जायगी। यह इसका अमोघ साधन है। मैंने यह बात शंकरानन्दजीको पत्रद्वारा सूचित कर दी।

मेरा नहीं रामका चित्र चाहिये

महाराजद्वारा रचित 'रामायण-मीमांसा' पुस्तकके प्रकाशनका भार मेरे ऊपर ही था। पुस्तक प्रायः छपकर तैयार हो चुकी थी, परंतु जिल्द आदि बाँधना बाकी था। महाराजने एक दिन मुझसे पूछा कि इस पुस्तकके तैयार होनेमें विलम्ब क्यों हो रहा है? मैंने उत्तर दिया कि महाराज, कुछ लोगोंकी यह भावना है कि इस पुस्तकमें आपका एक चित्र भी दिया जाय। चित्रके बननेमें कुछ विलम्ब होनेके कारण पुस्तक तैयार नहीं हो पायी। यह सुनकर महाराज कुछ विचलित-से हुए और उन्होंने तत्काल कहा कि 'खबरदार!' इस विषयमें मैं जैसा कहूँ वैसा करना, दूसरोंका कहा न करना। यदि चित्र देना है तो भगवान् रामका पञ्चायतन चित्र देना चाहिये न कि मेरा चित्र।

आत्म-प्रशंसासे विमुख

श्रावण शुक्ल द्वितीयाको महाराजश्रीके जन्म-दिवसपर भक्तोंने वर्षगाँठ मनानेका निश्चय किया। वाराणसीमें धर्मसंघ-शिक्षा-मण्डलमें एक विशाल जनसभाका आयोजन किया गया। जिसमें सुमेरुपीठके शंकराचार्य तथा काशीके मूर्धन्य विद्वान् सम्मिलित हुए। स्वामीजी महाराजको भी वहाँ आमन्त्रित किया गया। लोगोंके विशेष आग्रहपर वे सभामें भी पधारे। उस सभामें महाराजके व्यक्तित्व एवं कृतित्वकी प्रशंसामें विद्वानोंके व्याख्यान हो रहे थे। महाराजश्री कुछ देरतक तो वहाँ बैठे, लेकिन सभाके बीचमें ही बिना कुछ व्याख्यान दिये उठकर चले आये। बादमें उन्होंने कहा—'यह सब कार्यक्रम मेरे समक्ष होना उचित नहीं।'

महाराजकी इन भावनाओंसे उनकी निरपेक्षता और साधुता स्पष्ट प्रतीत होती थी।

विदेशयात्राका प्रसंग

एक बार चर्चामें महाराजने मुझसे कहा कि चिन्तन होना तो कोई बुरा नहीं, पर जब किसी बातका अभिनिवेशपूर्वक चिन्तन होता है तो ऐसा लगता है कि किसी प्रारब्धके दोषसे ही ऐसा हो रहा है। कभी-कभी इस प्रकारकी स्थिति हम लोगोंकी भी हो जाती है। मैंने उत्सुकतापूर्वक महाराजकी ओर देखकर पूछा—'ऐसा क्यों होता है महाराज?' महाराजश्रीने कहा कि 'शास्त्रके विपरीत जब कोई बात सामने आती है, तब यह स्थिति हमारी भी हो जाती है।' उदाहरणमें उन्होंने कहा कि 'श्रीमाधवाचार्यजी शास्त्रीका एक लेख जिसमें शास्त्रीय दृष्टिसे विदेश-यात्राका समर्थन किया गया है, जो मुझे देखनेको मिला। तबसे जबतक मैंने इसका उत्तर नहीं लिखा तथा उस संबन्धमें माधवाचार्यजीसे बातचीत नहीं हुई तबतक यह स्थिति बनी रही।' विदेश-यात्राके संबन्धमें महाराज यह कहते कि आज तो प्रायः पण्डित और सनातनधर्मी सभी विदेश-यात्रा करते हैं। मैं किसे मना करता हूँ। अपनी कमजोरियोंके कारण शास्त्रके विपरीत कोई व्यक्ति आचरण कर सकता है, परंतु यदि उसे वह शास्त्रसम्मत सिद्ध करनेकी चेष्टा करता है

तो यह घोर अन्याय है। सत्पुरुषोंको ईमानदारीपूर्वक अपनी कमजोरियों-को स्वीकार करते हुए शास्त्रका यथार्थ प्रतिपादन करना चाहिये। जिससे आनेवाली पीढ़ीको शास्त्रके वास्तविक अर्थको समझनेमें भ्रम पैदा न हो। महाराजश्रीने तत्काल विदेश-यात्रापर कई लेख लिखे, जिसमें शास्त्रीय दृष्टिसे विदेश-यात्राका निषेध प्रतिपादन किया गया। संसद्-सदस्य सेठ गोविन्ददासजीने महाराजश्रीसे धर्म-प्रचारार्थ विदेश-यात्राके लिये विशेष आग्रह किया तथा उनके नियमानुकूल व्यवस्था और प्रबन्ध करनेकी जिम्मेदारी भी स्वयं लेनी चाही, परंतु महाराजने इसे कतई स्वीकार नहीं किया। विदेश-यात्राके प्रायश्चित्तके संबन्धमें महाराजका यह निर्णय था कि प्रायश्चित्तके द्वारा पारलौकिक शुद्धि तो की जा सकती है, परंतु लौकिक शुद्धि नहीं हो सकती।

मन्दिर-मर्यादाका संरक्षण तथा श्रीकाशी-विश्वनाथकी स्थापना

मन्दिर-प्रवेशके संबन्धमें भी महाराजका मत स्पष्ट था। वे हरिजनोंके हृदयसे हितचिन्तक थे। एक बार कानपुरमें 'अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ'का महाधिवेशन चल रहा था। उत्तर प्रदेशके मुख्यमन्त्री बाबू सम्पूर्णानन्दजी वहाँ पधारे। महाराजश्री भी वहाँ उपस्थित थे। सम्पूर्णानन्दजीने अपने भाषणमें हरिजन-प्रवेश आदि बातोंकी चर्चा की। उनके भाषणके बाद महाराजने बड़ी युक्तिपूर्वक सभी बातोंका उत्तर दिया और कहा कि अपने शास्त्र सम्पूर्ण जीवोंके कल्याणका उपाय बताते हैं तथा अधिकारानुसार उनके कर्तव्यका निर्देश करते हैं। जिनसे उनका वास्तविक कल्याण होता है। दृष्टान्तरूपमें महाराजने कहा—'यदि कोई डॉक्टर किसी दुधमुँहे बच्चेके लिये गन्ना खाना लाभकारी बताता है तो उसके अभिभावक गन्नेको मूलरूपमें उस बच्चेको नहीं खिला सकते। गन्नेका रस निकालकर उसका कन्द तैयार करना होगा तथा उस कन्दका सत् देनेपर ही बच्चेको गन्नेका लाभ मिल सकेगा। यदि उसे गन्ना खिलाना चाहेंगे तो वह खा भी न सकेगा और उसे कष्ट भी होगा। इसी प्रकार यदि कोई अन्त्यज मन्दिरके शिखरका दर्शन करता है और मन्दिरकी बाह्य सेवा करता है तो उसे शास्त्रानुसार वही फल

मिलेगा जो किसी ब्राह्मणको मन्दिरके भीतर रहकर जप-तप-व्रत-नियम, सेवा-पूजा-अर्चा करनेसे मिलता है। अतः शास्त्रानुसार ही चारों वर्णोंको मन्दिरमें सेवा, उपासना करनी चाहिये।'

इन दिनों मन्दिरोंमें हरिजन-प्रवेशका एक आन्दोलन चलाया जा रहा था। जुलूस निकालकर हरिजनोंको गर्भमन्दिरोंमें प्रवेश करानेकी चेष्टाकी जा रही थी। महाराजश्रीने सार्वजनिक रूपसे इस आन्दोलनका प्रतिरोध किया तथा नेताओंको भी यह समझानेका प्रयास किया कि यह कार्य देश, राष्ट्र और हरिजनोंके हितमें नहीं है। कारण कि शास्त्रानुसार इससे मन्दिरकी मर्यादा नष्ट हो जायगी। अहिल्याबाईद्वारा संस्थापित पुराने काशी-विश्वनाथ-मन्दिरमें जब भी प्रवेशके निमित्त हरिजनोंका समूह आया तब महाराजश्री तथा उनके भक्तगणोंने निर्भीकतापूर्वक धरना दिया और इसका विरोध किया। परंतु अन्ततोगत्वा पुलिसके बलपर गर्भ-मन्दिरमें एक दिन प्रवेश हो ही गया।

महाराजका यह भाव था कि सभी मन्दिरोंमें भगवान्‌के गर्भमन्दिरको प्राङ्गणसे अलग रखा जाय, सभी वर्ण-आश्रमके लोग बाहर प्राङ्गणसे ही भगवान्‌का दर्शन-आराधना करें तथा गर्भमन्दिरके भीतर किसीका प्रवेश न हो। मन्दिरमें अर्चा-पूजा शास्त्रविधिके अनुसार केवल पुजारियोंद्वारा पवित्रतासे सम्पन्न हो, जिससे आजके सामाजिक परिवेशमें कानूनकी भी रक्षा हो जाय; साथ ही शास्त्रानुसार मन्दिरकी मर्यादाका भी रक्षण हो सके। इस व्यवस्थाके निमित्त महाराजश्रीने पुराने 'काशी-विश्वनाथ-मन्दिर'में अत्यधिक प्रयास किया। प्रारम्भमें तो कुछ समयतक इस प्रकारकी व्यवस्था चली। बादमें सरकार तथा पंडोंने मिलकर यह व्यवस्था समाप्त कर दी और मन्दिरकी मर्यादाको भी भङ्ग कर दिया। तब महाराजश्रीने देशके मूर्धन्य विद्वानों एवं पण्डितोंकी सभा बुलायी। जिसमें विचार-विमर्शके बाद यह निर्णय हुआ कि चूँकि श्रीकाशी-विश्वनाथका मूल मन्दिर (ज्योतिर्लिङ्ग) आज भी उपलब्ध नहीं है। मुगलकालसे अबतक चार मन्दिरोंकी स्थापना हो चुकी है। अहिल्याबाईद्वारा स्थापित यह मन्दिर भी चौथा मन्दिर है। अतः शास्त्रानुसार मन्दिर-मर्यादाके रक्षण हेतु नये मन्दिर 'श्रीकाशी-विश्वनाथ'की स्थापना बड़े

समारोहके साथ की गयी। काशीके विद्वान् पण्डितोंने नर्मदामें बाण-गङ्गासे शास्त्रविधिके अनुसार अनुष्ठानपूर्वक शिवलिङ्ग प्राप्त किया तथा उसमें श्रीकाशी विश्वनाथका आवाहन और प्रतिष्ठा विधि-विधानसे की गयी। यहाँ आज भी महाराजद्वारा निर्धारित शास्त्रीय नियमानुसार पूजा-अर्चाकी व्यवस्था है तथा सबको गर्भमन्दिरके बाहरसे दर्शन-पूजनका समान अधिकार है। जो भारतवर्षके सभी मन्दिरोंके लिए शास्त्र-मर्यादाका एक आदर्श प्रस्फुटित करता है।

महाराजकी संनिकटताका मुझे यह लाभ मिला कि सामान्य बातचीतके क्रममें कभी-कभी सत्संगकी इतनी अमूल्य बातें प्राप्त हो जातीं जो अन्यत्र दुर्लभ थीं।

साधुको स्वावलम्बी होना चाहिये

एक बार स्वाभाविकरूपसे महाराजने कहा कि 'साधुको स्वावलम्बी होना चाहिये।' कुछ ही क्षण बाद पुनः बोले—हम कभी भी अपने ठाकुरजीको साथ लेकर जा सकते हैं। हमें किसीकी अपेक्षा नहीं है।' मैंने धृष्टतापूर्वक महाराजजीसे पूछा—'यह कैसे हो सकता है महाराज! जब आपके ठाकुरजी आपके साथ रहेंगे तो उनकी पूजा-अर्चा तथा भोग-रागकी सामग्री भी साथ रखनी पड़ेगी। फिर इन सामग्रियोंको साथ ले जानेके लिये किसी ब्रह्मचारी या सेवककी आवश्यकता भी होगी ही।' तब महाराजजीने उत्तर दिया कि तुम हमारी पूजा नहीं जानते हो। हमारी पूजा जंगलमें भी हो सकती है। गङ्गाजी तो सर्वत्र प्राप्त हैं ही। गङ्गाजलसे भगवान्‌का स्नान होगा, पत्र-पुष्पसे पूजा होगी। गङ्गाजलका ही भोग लगेगा तथा हम जो भिक्षा करेंगे वही हमारे भगवान् भी पायेंगे। परंतु जहाँ सब साधन उपलब्ध हैं वहाँ षोडशोपचार, राजोपचार, चतुःषष्ठ्युपचार—ऊँची-से-ऊँची पूजा होती है। इस प्रकार महाराज कभी किसीपर अवलम्बित नहीं थे।

स्वल्प साधुतासे भी कल्याण

एक बार काशीमें स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज वृन्दावन विहारी भवनमें महाराजश्रीसे मिलने आये। उन्होंने बातचीतके सिलसिलेमें महाराजश्रीसे

कहा कि आजकल साधु बहुत कम होते जा रहे हैं और जो साधु होते हैं उनमें साधुता भी कम होती जा रही है। महाराजने उत्तर दिया कि स्वल्प साधुतासे भी कल्याण हो सकता है, पर साधुता हो तो सही अर्थात् मनुष्यमें कुछ भी साधुता होनी तो चाहिये ही—तभी वह उस पथपर आगे बढ़ सकता है।

साधुके लिये कलंक

किसी संदर्भमें महाराजजीने कहा कि कभी-कभी साधुकी पुस्तकोंमें, तकियोंमें तथा बिछावन आदिमें रुपये-पैसे निकलते हैं। यह साधुके लिये कलंक है।

कर्त्तव्य-पालनमें समयका विभाजन आवश्यक

एक बार मैंने जिज्ञासा की कि महाराज! मनमें यह समझते हुए भी कि संसार नश्वर है और यह प्रपञ्च साथ नहीं जायगा, इसलिये पूरा समय भगवच्चिन्तन आराधना तथा सेवामें ही लगाया जाय, परन्तु गृहस्थ-जीवनकी जिम्मेदारियोंको देखते हुए यह सम्भव प्रतीत नहीं होता। अत: इससे कैसे छुटकारा मिले। तब महाराजने कहा कि प्राचीन लोग अपने समयका विभाजन करके ही सब कार्य करते थे। इतनी देर व्यापारका कार्य करना है, इतनी देर सत्संग-स्वाध्याय, पूजा-अर्चा तथा सेवा करनी है। साधकको समयका विभाजन कर उसके अनुसार अपनी साधना सुदृढ़ करनी चाहिये। सभी कार्य घड़ीकी नोकपर कर्त्तव्य-रूपसे करना ही उचित है। महाराजने यह भी कहा कि यदि जंगलमें जाकर भी घरका चिन्तन बना रहे तो इसकी अपेक्षा घरमें रहकर भगवान्का चिन्तन करना ही कल्याणकारी है।

स्नेहीजनोंमें भगवद्बुद्धि भगवान्की पूजाका अमोघ साधन

बातचीतके क्रममें एक बार महाराजने बताया कि अपने धर्मशास्त्रोंमें मनुष्यके कल्याणके लिये भगवत्सेवा, आराधना-पूजनकी बड़ी सरल विधियोंका प्रतिपादन है। घरमें पति-पत्नी, माता-पिता, पुत्र-पौत्र और बन्धु-बान्धवोंमें मनुष्यका स्वाभाविक स्नेह-प्रेम होता ही है तथा मोह-ममताके वशीभूत होकर

उनकी सेवा-अर्चा भी करनी ही पड़ती है। यदि उन पारिवारिक सदस्योंमें मोह-ममताकी जगह भगवद्बुद्धि कर ली जाय, वृद्ध माता-पिताको माता अन्नपूर्णा एवं भगवान् विश्वनाथका स्वरूप मान लें, पतिको परमेश्वर, पुत्रको मदनमोहन श्यामसुन्दर, लाडले पौत्रको लड्डूगोपाल, पुत्रवधूको राधारानी, कुमारी कन्याको भगवती जगदम्बा—इस प्रकार यदि भावना बना ली जाय तो पारिवारिक जनोंके निमित्त किये गये सभी कार्य स्वत: भगवान्की पूजामें परिवर्तित हो सकते हैं। महाराजश्रीने कहा कि जब पत्थरकी मूर्तियोंमें भगवान्की पूजा हो सकती है तो सचल-सजीव स्नेही जनोंमें भगवद्भाव हो जानेपर भगवान्की पूजा क्यों नहीं हो सकती।

अतिथि-सत्कार मुख्य धर्म

एक बार मैंने महाराजजी से पूछा कि जैसे जप, स्वाध्याय, तप ब्राह्मणका मुख्य धर्म है, इसी प्रकार वैश्यका विशेष धर्म क्या है? तब महाराजने उत्तर दिया कि 'अतिथि-सत्कार।' कोई अतिथि घरमें आ जाय तो भोजन-जल इत्यादिसे उसका सत्कार करना चाहिये। यदि भोजन करनेके समय आ जाय तो पहले अतिथिको भोजन कराकर पुन: बादमें स्वयं करे। यहाँतक कि भोजन करनेके पूर्व यथासम्भव कुछ समयतक दरवाजेपर खड़े होकर अतिथिकी प्रतीक्षा भी करनी चाहिये।

एक बार चन्द्रग्रहणके समय महाराजश्री काशीमें ही थे। चन्द्रग्रहणका सूतक लग चुका था। एक पण्डित महाराजश्रीसे मिलने बाहरसे पधारे। वे महाराजके पूर्व परिचित थे। महाराजने पूछा—'आपके लिये भोजन बनवा दिया जाय?' पण्डितजीने उस समय भोजनके लिये अस्वीकार कर दिया। मैंने बादमें महाराजसे पूछा कि 'ग्रहणके सूतकमें तो भोजन करना निषिद्ध है। आपने पण्डितजीसे भोजनके लिये क्यों पूछा?' तब महाराजने उत्तर दिया कि 'भोजन न करनेकी बात पण्डितजीके विचारनेकी है। अपना कर्त्तव्य तो उनसे पूछना ही है।'

यथार्थ उद्देश्य-निर्धारणसे ही सफलता

एक बार किसी भक्तने मेरे समक्ष महाराजसे प्रश्न किया कि संतकी

संनिधि प्राप्त हो जानेपर जीवनमें परिवर्तन होना चाहिये, परंतु लोकमें इसके विपरीत बात दिखायी पड़ती है। वर्षोंतक संतकी संनिधि और सेवासे भी सांसारिक वासनाएँ और आन्तरिक दुर्गुण समाप्त नहीं होते। इसका एक उदाहरण भी उन्होंने प्रस्तुत किया। तब महाराजने उसके उत्तरमें एक कथा सुनायी। 'एक राजा थे और उनकी एक रानी थी। एक दिन अकस्मात् राजाका देहान्त हो गया। राज्यभरमें शोकको लहर छा गयी, रानी परम पतिव्रता सती-साध्वी और तत्त्वज्ञानसे युक्त थी। राजाकी अन्त्येष्टिके लिये चन्दनकी चिता लगायी गयी, जिसपर रानी अपनी गोदमें राजाको लेकर बैठ गयी। राज्यकी सम्पूर्ण शोकाकुल प्रजा राजाकी अन्त्येष्टि देखने उमड़ पड़ी। उसी क्षण चितापर बैठी रानीने अपनी प्रजाको सान्त्वना देनेके लिये एक सुन्दर व्याख्यान दिया, जिसमें ब्रह्मके यथार्थ-स्वरूपका निरूपण करते हुए आत्मा अजर-अमर-नित्य और शाश्वत है तथा मन-बुद्धि-अहंकार-संयुक्त यह शरीर और यह संसार अनित्य एवं नश्वर है। अतः इसके लिये कभी शोक करना उचित नहीं। उस जनसमुदायमें रानीके गुरुजी भी उपस्थित थे। यह सब सुनकर उन्हें अत्यधिक आश्चर्य हो रहा था। दो मिनटकी एकान्त वार्तामें उन्होंने रानीसे कहा कि 'तू शिष्या तो मेरी ही है। मैंने ही तुझे पढ़ाया है। परंतु तुम्हारी इतनी ऊँची स्थिति कैसे बन गयी, जबकि मेरेमें तो कोई परिवर्तन नहीं हुआ' तब रानीने उत्तर दिया—'यह तो ठीक है कि मैं शिष्या आपकी ही हूँ। परंतु मुझे शिष्या बनानेमें या पढ़ानेमें आपका लक्ष्य क्या था?' तब गुरुजीने कहा कि 'मेरा उद्देश्य तो भौतिक सुख-समृद्धि और धन-अर्जन करना ही था।' रानीने पूछा कि आपका यह उद्देश्य पूरा हुआ या नहीं? गुरुजीने उत्तर दिया कि यह उद्देश्य तो मेरा पूरा हो गया। मुझे सभी प्रकारके भौतिक साधन और समृद्धियाँ प्राप्त हैं। इसपर रानीने कहा कि आपका लक्ष्य भौतिक समृद्धि अर्थोपार्जन था, जबकि मेरा लक्ष्य आध्यात्मिक उन्नति और भगवत्प्राप्ति था। अतः आपको अपने लक्ष्यके अनुसार और मुझे अपने लक्ष्यके अनुसार सफलता प्राप्त हुई।' इस प्रकार महाराजश्रीने यह दृष्टान्त देकर बताया कि उद्देश्यके अनुसार ही फलकी प्राप्ति होती है। इसलिये यदि कोई उत्कृष्ट कार्य भी निकृष्ट उद्देश्यके लिये किया जाय तो उसका परिणाम भी उत्कृष्ट नहीं हो सकता।

इसलिये कोई व्यक्ति संत-महात्माओं एवं गुरुजनोंकी सेवा अपने भौतिक स्वार्थकी पूर्तिके उद्देश्यसे करता है तो स्वार्थपूर्ति हो जाती है, परंतु महात्माकी संनिकटताका आध्यात्मिक लाभ जो मिलना चाहिये वह उसे नहीं मिल पाता।

अच्छे धनकी अच्छी बरकत

'बेईमानी, चोरी तथा अन्य तरीकोंसे कमाये हुए धनकी बरकत भी वैसी ही होती है तथा सत्यता और ईमानदारीसे कमाया हुआ धन कभी घटता नहीं।' इस संदर्भमें महाराजने पद्मपुराणकी एक कथा प्रस्तुत करते हुए कहा कि 'एक बार राघवेन्द्र भगवान् रामचन्द्रने अपनी अयोध्यामें ब्रह्मपुरीका आयोजन किया। ब्रह्मपुरीमें सम्मिलित होनेके लिये दूर-दूरसे ब्राह्मणोंकी टोलियां पधारने लगीं। भूतभावन भगवान् विश्वनाथको जब यह मालूम हुआ कि आज राघवेन्द्रने ब्रह्मपुरीका आयोजन किया है तो कौतूहलवश वे भी एक वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारणकर किसी ब्राह्मणकी टोलीमें शामिल हो गये और भगवान् रामकी ब्रह्मपुरीमें पहुँच गये। भगवान् राघवेन्द्र तो स्वयं अन्तर्यामी थे ही। उन्होंने उस बूढ़े ब्राह्मणको मनमें पहचान लिया तथा यह समझ लिया कि भगवान् सदाशिव मेरी परीक्षा करने यहाँ पधारे हैं। उन्होंने उस वृद्ध ब्राह्मणका विशेष ध्यान रखा। ब्रह्मपुरीकी पंगत पड़ी तो भगवान् राघवेन्द्रने स्वयं उस वृद्ध ब्राह्मणके पादपद्मोंका जलद्वारा अपने कोमल हस्त-कमलोंसे प्रक्षालन किया और एक अलग आसनपर उन्हें विराजमान कराया। भोजन-सामग्री परोसनेका कार्य प्रारम्भ हुआ। उस वृद्ध ब्राह्मणकी पत्तलमें सामग्री परोसते ही समाप्त हो जाती। कोई सामान बचता ही नहीं। सभी परोसनेवाले उस बूढ़े ब्राह्मणकी पत्तलको भरनेमें लग गये, पर पत्तल तो खाली-की-खाली ही नजर आती। यह सब देखकर भगवान् राघवेन्द्र चिन्तित हुए। महलमें चिन्ता व्याप्त हो गयी और यह समाचार भगवती जगज्जननी जानकीके पास अन्तर्महलमें पहुँचा कि एक ऐसे वृद्ध ब्राह्मण पधारे हैं, जिनकी पत्तलपर सामग्री परोसते ही साफ हो जाती है। यह भगवान् रामकी प्रतिष्ठाका प्रश्न बन गया। भगवती जानकी भी चिन्तित

हो गयीं। परंतु जैसे भगवान् राघवेन्द्रके पास सदाशिव पधारे थे, वैसे ही पराम्बा भगवती जानकीके पास माँ अन्नपूर्णा भी बैठी थीं। श्रीजानकीजीने श्रीअन्नपूर्णाजीसे अनुरोध किया माँ! उन वृद्ध ब्राह्मणको आप स्वयं अपने हाथोंसे परोसें तभी प्रतिष्ठा बचेगी। सभी परोसने-वाले वहाँसे हटा दिये गये। माँ अन्नपूर्णाने स्वयं अपने हाथसे भगवान् विश्वनाथको परोसना प्रारम्भ किया। माँ अन्नपूर्णाने पत्तलमें एक लड्डू परोसा। भगवान् विश्वनाथ खाते-खाते थक गये, पर वह समाप्त नहीं होता था। श्रीअन्नपूर्णाजीने सभी मिठाइयाँ एक-एक परोसीं। भगवान् खाते-खाते अघा रहे थे। माँने दुबारा परोसना चाहा तो सदाशिवने स्पष्ट मना कर दिया। कारण, उनकी पत्तल खाली ही नहीं हो रही थी, वैसी ही भरी थी।' महाराजने कहा कि जिस प्रकार भगवती अन्नपूर्णाद्वारा भगवान् सदाशिवकी पत्तलमें परोसी गयी मिठाई बार-बार खानेपर भी कभी घटती नहीं उसी प्रकार अच्छी नीयतसे कमाया हुआ धन कितना भी खर्च करनेपर घटता नहीं और खराब नीयतसे अर्जित धन कभी ठहरता नहीं, साथ ही दुःखका कारण भी बनता है। इसलिये अच्छे धनकी अच्छी बरक्कत होती है।

भोग्य-लक्ष्मी और दृश्य-लक्ष्मी

लक्ष्मीका वर्णन करते हुए महाराजने एक दृष्टान्त सुनाया और कहा—'एक भक्तने लक्ष्मीकी उपासना प्रारम्भ की। कुछ समय पश्चात् भगवती लक्ष्मी प्रसन्न होकर प्रकट हो गयीं और बोलीं—'वर माँगो।' भक्तको मनमें लक्ष्मीकी कामना तो थी ही, उसने संकोचपूर्वक कहा—'मैं लक्ष्मी चाहता हूँ।' भगवतीने पुनः पूछा—'कौन-सी लक्ष्मी चाहते हो?—दृश्य-लक्ष्मी या भोग्य-लक्ष्मी!' वह लक्ष्मी-भक्त असमंजसमें पड़ गया, समझ नहीं पा रहा था कि किस लक्ष्मीका वरण करूँ। तब उसने कहा—'माँ! यह दृश्य-लक्ष्मी क्या है और भोग्य-लक्ष्मी क्या है?' इसपर भगवतीश्रीने उत्तर दिया—'दृश्य-लक्ष्मी तो यह है कि तुम्हारे पास धनकी कोई कमी नहीं रहेगी, अपरिमित धन होगा, पर उस धनका तुम समुचित उपभोग नहीं कर सकोगे। वह धन केवल तुम्हारे संतुष्टि और दर्शनमात्रके लिये ही होगा।' यह सुनकर वह लक्ष्मी-अभिलाषी भक्त आश्चर्यचकित हुआ और उसने पूछा—'धन

रहनेपर उपभोग क्यों नहीं कर सकूँगा। भगवतीने कहा—'उपभोग न कर पानेकी विभिन्न परिस्थितियाँ तुम्हारे सामने स्वतः प्रकट हो जायँगी, चाहनेपर भी तुम्हारेमें उपभोगकी सामर्थ्य नहीं रहेगी और तुम लक्ष्मीका उपभोग भी न कर सकोगे।' भक्तने पुनः पूछा—'माँ! भोग्य-लक्ष्मी क्या है?' इसके उत्तरमें भगवती लक्ष्मीने कहा—'दृश्य-लक्ष्मीके न होनेपर भी समय-समयपर आवश्यकतानुसार उच्चकोटिके सभी पदार्थ उपभोगके लिये उपलब्ध रहेंगे। समयपर किसी भी वस्तुका अभाव नहीं होगा। संसारकी सभी भोग्य सामग्रियाँ भी उपलब्ध रहेंगी और उसे भोगनेका सामर्थ्य भी प्राप्त होगा—यही भोग्य-लक्ष्मी है।' यह सुननेके बाद भक्तने प्रार्थना की—'माँ! मुझे तो भोग्य-लक्ष्मी और दृश्य-लक्ष्मी दोनों चाहिये।'

त्याग-वैराग्य जितना अधिक हो उतना ही उत्तम

श्रीनन्दनन्दनानन्द सरस्वती [शास्त्री स्वामी] पूर्वाश्रममें जिनका नाम नन्दलाल शास्त्री था, वे पहले संसद्-सदस्य भी थे। महाराजश्रीसे काशीमें संन्यास ग्रहण कर रहे थे। संन्यास-ग्रहणके समय सभी वस्तुओं तथा शरीरके वस्त्रोंका त्याग करना पड़ता है। लोक-लज्जा-निवारणार्थ गुरु एक लँगोटी, धारण करा देते हैं। महाराजने मुझे संकेत किया कि इनके लिए दो लँगोटी, दो अचला, एक कंबल और एक तकिया मँगा देना। मैंने महाराजजीके निर्देशानुसार सब सामान बनवाकर संन्यास-ग्रहणोपरान्त शास्त्री स्वामीको देना चाहा। शास्त्री स्वामीने अस्वीकार कर दिया और कहा कि 'मैंने क्या इन वस्तुओंके लिये संन्यास लिया है, मुझे इनकी क्या आवश्यकता है। मझे यह सब कुछ नहीं चाहिये। महाराजश्रीसे मैंने उनकी सब बातें कह दीं। महाराजने उत्तर दिया कि बड़ा अच्छा है, त्याग-वैराग्य तो जितना अधिक हो उतना ही उत्तम है। उन वस्तुओंको अपने पास घरमें सुरक्षित रख दो।

मुझे यह देखकर थोड़ा आश्चर्य हुआ कि महाराजने एक बार भी शास्त्री स्वामीसे उन वस्तुओंको पुनः लेनेका आग्रह नहीं किया। दूसरे दिन प्रातःकाल किसीने स्वामीजी महाराजसे आकर कहा कि बिना वस्त्र खाली जमीनपर सोनेके कारण शास्त्रीजीके पूरे शरीरमें दर्द होनेसे वे उठ नहीं पाते। शरीर जकड़

गया है। तब महाराजने पुनः मुझे बुलाया और कहा कि उन वस्तुओंको भेज देना। महाराजने किसीके द्वारा उनके पास उन वस्तुओंको पुनः भेजा। इस बार उन्होंने स्वीकार कर लिया और दूसरे दिन शास्त्री स्वामीने मुझसे कहा कि मुझे ऐसा लगा कि लक्ष्मणने जैसे शबरीके बेरका तिरस्कार किया, बादमें वे ही बेर संजीवनी बूटीके रूपमें उन्हें ग्रहण करने पड़े, उसी प्रकार आपकी उन वस्तुओंको मुझे भी शरीर-रक्षाके लिये औषधरूपमें स्वीकार करना ही पड़ा। यह उनका कृपापूर्ण आन्तरिक भाव था।'

योग-साधनामें संयमकी अनिवार्यता

एक बार ब्रह्मचारी-वेशमें राजस्थानके एक व्यक्ति वृन्दावन विहारी-भवनमें महाराजके पास ही आकर कई दिनोंसे ठहरे हुए थे। महाराजकी संनिधिमें रहकर लंबी यौगिक साधना करनेकी योजना बना रहे थे। एक दिन वृन्दावन विहारी-भवनके निचले हिस्सेमें पंजाबी बन्धुओंका कोई समारोह हो रहा था, जिसमें डिनर पार्टीका आयोजन था। विभिन्न खाद्य-सामग्री टेबुलपर सजी थी। राजस्थानके ब्रह्मचारी महोदयका यह सब देखकर मन चल गया और उन्होंने महाराजके ब्रह्मचारी श्रीमार्कण्डेयजीसे खानेकी अपनी इच्छा प्रकट की। उन्होंने उन पंजाबी बन्धुओंसे कहकर उन्हें भोजन करा दिया। महाराजको जब यह बात मालूम हुई तो उन्होंने तत्काल उसी दिन राजस्थानी ब्रह्मचारीको वहाँसे विदा किया। मेरे पूछनेपर महाराजने कहा कि 'यौगिक साधना' तो बहुत आगेकी बात है। खान-पानपर संयम तो बहुत प्रारम्भकी ही बात है। हम लोग भी बाहर दूकानोंमें मिठाई और नमकीन आदि विभिन्न सामग्रियां सजी हुई देखते हैं तो उसमें वमन-जैसी अरुचि रहती है। जब खान-पानकी इच्छानुसार उनका कोई नियन्त्रण नहीं है तो यौगिक साधनाकी बात तो दिवा-स्वप्नमात्र ही है।

साधुका बाह्य और अन्तर्जीवन

काशीमें उन दिनों नीचीबाग-स्थित पोस्ट ऑफिसके बरामदेमें एक स्थूलकाय व्यक्ति नंग-धड़ंग पड़े रहते थे। उनका शरीर स्थूल होनेपर भी अत्यधिक आकर्षक था। चेहरेपर निरन्तर एक अद्भुत आभा थी, जिसमें एक विचित्र मस्ती झलकती रहती थी। सड़कपर चलनेवाले लोगोंका

स्वाभाविक आकर्षण उनकी तरफ होता था। २-४ मिनट रुककर लोग उनके कार्यकलापोंको देखते थे। वे जाड़ा, गर्मी और बरसात सभी मौसमोंमें दिगम्बर रहते। ओढ़ने और बिछानेका भी कोई कपड़ा उनके पास नहीं रहता था। वे अत्यन्त मितभाषी थे। उनकी भाषा कोई समझता भी नहीं था। मेरा प्रतिदिनका वह मार्ग था। कुछ क्षण रुककर मैं प्रायः उन्हें कौतूहलपूर्वक देखता था। वे पड़े-पड़े कुछ लिखते रहते। कोई पैसा देना चाहता तो उससे कहते पोस्टकार्ड ले आओ। पहले तो मैंने समझा कोई भिखारी होगा, पर बादमें उनके लक्षणोंसे लगा कि यह कोई संत भी हो सकते हैं। कई लोग रात्रिमें आकर उनकी सेवा किया करते थे, पैर दबाते, वे निःस्पृहभावसे पड़े रहते। वे सबको समान रूपसे देखते और मुसकराते रहते। मैंने उनकी चर्चा तथा उनकी सब बातें महाराजश्रीसे निवेदन कीं। महाराजने बड़े गौरसे उनकी बातें सुनीं, पर कुछ उत्तर नहीं दिया। महाराज जब कभी कहींसे काशी पधारते तो यदा-कदा उनके बारेमें पूछ लेते और मैं उनके प्रति अपने अनुभवोंको सुना देता। अन्तिम बार एक दिन महाराजने पूछा—'क्या हाल है तुम्हारे नीचीबागवाले महात्माका?' मैंने कहा—'महाराज! उनका तो काशीवास हो गया, पर इधर उनकी बड़ी नीची स्थिति हो गयी थी।' महाराजने उत्सुकतापूर्वक मेरी ओर देखा। मैंने कहा कि पहले तो वे दिगम्बर रहते थे, अब गंजी और जाँघिया पहन लिया था तथा जनेऊ, भी धारण कर लिया था, शरीरसे काफी दुर्बल भी हो गये थे। महाराजने एक ही बात कही कि हम लोगोंकी दृष्टिमें बाह्य बातोंका कोई महत्त्व नहीं है। महाराजकी इस बातको सुनकर उस दिन मुझे यह बात समझमें आयी कि शास्त्रोंमें वर्णित लक्षणोंके आधारपर महाराजश्री भी उन्हें एक सिद्ध संतके रूपमें स्वीकार करते थे। महाराजजीकी दृष्टिमें ऐसे और भी लोग काशीमें हो चुके थे, जिनका ऊपरी जीवन तो विक्षिप्त-जैसा था, पर भीतरसे वे उच्चकोटिके सिद्ध संत थे।

अन्तःकरणकी साधुता ही सच्ची साधुता

अयोध्यामें एक संत हैं—'श्रीमधुकरिया बाबा'। जोधपुरके एक साधुने मेरी उनसे भेंट करायी और मुझे संकेत किया कि आप चाहें तो सत्संगकी

बातें पूछ सकते हैं। मैंने कुछ चर्चा चलायी तो मधुकरिया बाबाने सत्संगकी बहुत अच्छी-अच्छी बातें सुनायीं। इसी संदर्भमें उन्होंने अपनी एक सत्य घटना सुनाते हुए कहा कि एक दिन किसी भक्तने भीगे हुए चने मुझे दिये, जिसे मैंने पा लिया। उन सज्जनने मेरे मना करनेपर भी और चने मुझे दे दिये और कहा कि इसे ले जाइये फिर पा लीजियेगा या और किसीको खिला दीजियेगा। मैं संकोचमें लेता आया। रात्रि हो चुकी थी। मेरे मनमें बार-बार यह बात आती थी कि कल इस चनेका क्या उपयोग करूँगा, कभी सोचता था स्वयं खा लेंगे, कभी यह विचार आता था कि किसीको खिला देंगे, कभी सोचता था इसे लेनेकी क्या जरूरत थी। इसी उधेड़बुनमें रात्रि बीतने लगी, नींद नहीं आयी। रात्रिके जब दो बज गये तो मैंने सोचा कि अब तो उठनेका समय होने लगा, पर नींद नहीं आनेसे भजनमें भी विघ्न होनेकी सम्भावना हो रही है। मैं कुछ चिन्तित भी हुआ। उसी समय मुझे यह प्रेरणा हुई कि नींद नहीं आनेका कारण ये चने जो तुम्हारी झोलीमें रखे हैं, वे ही हैं। वे बाबा तुरंत उठे और वहाँ सरयूजीमें उन चनोंको तुरंत प्रवाहित कर दिया। तब उन्हें थोड़ी देर बहुत अच्छी नींद आयी और वे निश्चिन्त भावसे सोये। कुछ ही समयके अन्तरालमें ठीक इसी प्रकारकी एक दूसरी घटना भी उनके साथ घटी। एक महानुभावने एक रुपया बाबाके हाथमें दिया और कहा—बाबा! इसका कुछ ले लेना। बाबा कुछ निर्णय नहीं कर सके। रुपया हाथमें लिये हुए अपने स्थानपर चले आये। सोचने लगे कि कल इस रुपयेकी धूपबत्ती लाकर अपने भगवान्‌के लिये रखेंगे फिर मनमें दूसरा विचार आया कि बाल-भोग ही आ जाय तो क्या हर्ज है। रात्रि हो चुकी थी। निद्रादेवीकी प्रतीक्षामें बाबा लेट चुके थे। परंतु मानसिक विचारोंकी शृंखला चल रही थी। एकाएक बाबा चौंक पड़े और सावधान होकर मनमें विचार किया कि आज भी तुम्हारी उस दिनवाली दशा होनेवाली है। जिस प्रकार उस दिन रात्रिमें दो बजेतक नींद नहीं आयी, उसी प्रकार आज भी यह एक रुपया नींदको हराम करना चाहता है। बाबा उठे और पासके एक कुएँमें उन्होंने रुपयेको डाल दिया और आकर निश्चिन्त-भावसे सुखपूर्वक सोये। यह सत्य घटना मधुकरिया

बाबाने स्वयं अपने मुखसे सुनायी। मैंने भी सब बात महाराजश्रीको सुनायी और उनसे पूछा कि महाराज! संसारमें तो जिन लोगोंको जितना अधिक पैसा-रुपया अपने पास होता है उनको उतनी ही अच्छी नींद आती है, पर अवधके संत श्रीमधुकरिया बाबाको एक रुपया भी नींदमें बाधक क्यों बन गया? यह बात समझमें नहीं आती। इस प्रश्नके उत्तरमें महाराजश्रीने श्रीमद्भागवतका एक श्लोक सुनाया, जिसका आशय था कि आँखमें अत्यन्त सूक्ष्मातिसूक्ष्म तन्तु भी महान् पीड़ाका कारण बनता है जबकि शरीरके दूसरे अङ्ग पीठ आदिपर कोड़ेकी मारसे भी उतना अधिक कष्ट नहीं होता। इसी प्रकार जिसका अन्तःकरण जितना अधिक शुद्ध है उसे किंचित् संसार भी उतना ही अधिक कष्टप्रद प्रतीत होता है पर जो सांसारिक वातावरणमें घुले-मिले हैं, उनका अन्तःकरण उतना शुद्ध नहीं है उन्हें संसारकी जटिलताएँ उतनी कष्टप्रद प्रतीत नहीं होतीं; बल्कि उन्हें उन्हीं सांसारिक पदार्थोंमें सुखाभासकी अनुभूति होने लगती है। अतः जन्म-जन्मान्तरकी साधनाओंसे जिनका अन्तःकरण निर्मल हो चुका है ऐसे साधु पुरुषोंको सांसारिक वस्तुके रूपमें एक रुपया भी कष्टदायक हो सकता है जबकि संसारमें रचे-पचे लोगोंको लाखों-करोड़ों रुपये प्राप्त कर भी संतोष नहीं होता। महाराजश्रीकी यह बात सुनकर मेरी शंकाका समाधान प्रायः हो गया।

आत्मशक्तिकी दृढ़ताने भयंकर रोगोंको बिना उपचार दूर कर दिया

एक बार चातुर्मास्य-कालमें अचानक महाराजश्रीके पेटमें भयंकर पीड़ा शुरू हो गयी। वे अत्यधिक बेचैनीका अनुभव करने लगे। महाराजने कहा कि एक सौ बिच्छूके डंक मारनेसे जो पीड़ा हो सकती है, वही पीड़ा अभी पेटमें है। मेरे पूछनेपर महाराजने बताया कि एक बार मुझे एक बिच्छूने डंक मारा था, उस समय मुझे जो पीड़ा हुई थी, उसी अनुभवके आधारपर मैंने यह बात कही। काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय तथा अन्य स्थानोंसे डॉक्टरोंने आकर परीक्षण किया और पित्तकी थैलीमें कुछ गड़बड़ी पायी, जिसके आधारपर पेट खोलकर गॉल्ड-ब्लेडरका ऑपरेशन करनेकी बात डॉक्टरोंकी

ओरसे निश्चित की गयी। इन्जेक्शन तथा दवाएँ डॉक्टरोंकी ओरसे निश्चित की गयीं। इन्जेक्शन तथा डॉक्टरी दवाओंके प्रयोगसे पेटके दर्दमें राहत मिलनेका आश्वासन भी डॉक्टरोंने दिया। पर महाराजश्रीपर इन बातोंका कोई असर नहीं हुआ। उन्होंने तो अपने नियमानुसार आयुर्वेदिक औषधिका ही सेवन किया। दीक्षितजी वैद्यकी पुड़ियासे ही वे २४ घंटेमें स्वस्थ हो गये। ऑपरेशन आदि करानेकी चर्चा भी दुबारा नहीं चली।

इसी प्रकार एक बार महाराजके कानमें भी भयंकर पीड़ा होने लगी। डॉ० एस० नाथ जो महाराजश्रीके परम भक्त भी थे, उन्होंने कानका परीक्षण किया और इन्जेक्शन देकर दर्दको तुरंत ठीक करनेका आश्वासन दिया। साथ ही यह आश्वासन भी दिया कि इंजेक्शनमें किसी प्रकारकी निषिद्ध वस्तुओंका सम्मिश्रण नहीं होगा। पर महाराजने यह स्वीकार नहीं किया और कहा कि यह तो ठीक है, परंतु एक बार यदि सूई ले लूँगा तो आगे फिर इसकी शृंखला प्रारम्भ हो जायगी। अन्तमें अन्य उपचारोंसे ही कानकी पीड़ा भी समाप्त हो गयी।

एक बार महाराजको हॉइड्रोसीलका ऑपरेशन करानेकी स्थिति आ गयी। सर्जन सूई देकर स्थान शून्य करना चाहते थे, पर महाराजने बिना सूई तथा बिना डॉक्टरी औषधिके प्रयोगके ही ऑपरेशन कराना स्वीकार किया। यह ऑपरेशन महाराजश्रीकी आत्मशक्तिके आधारपर ही सम्पन्न हो सका। सर्जन डॉक्टर भी महाराजकी नियम-प्रतिबद्धता और आत्मशक्तिको देखकर चकित थे। ऑपरेशनके समय जो अनुभव हुए उन्हें भी महाराजने कभी प्रसंगवश सुनाया था।

भारतीय संस्कृति और सनातनधर्मका एक ग्रन्थ

वाराणसीमें एक दिन महाराजश्रीके एक भक्त बाहरसे दर्शनके लिये सपरिवार आये हुए थे। महाराजसे बातचीत चल रही थी। उन सज्जनने कहा कि महाराजजी अपने धर्ममें कितने ही ग्रन्थ हैं। चार वेद, ब्राह्मण, आरण्यक तथा सैकड़ों उपनिषद् ग्रन्थ हैं। अठारह महापुराण, कई उपपुराण, स्मृतियाँ तथा निबन्ध-ग्रन्थ हैं। भारतीय संस्कृति और सनातनधर्मको समझनेके लिये कोई एक ऐसा ग्रन्थ होना चाहिये, जिसे पढ़कर सनातनधर्मकी सम्पूर्ण

बातोंकी जानकारी हो जाय। यह सुनकर महाराजश्रीने तत्काल उत्तर दिया कि यदि भारतीय संस्कृति और सनातनधर्मकी पूर्ण जानकारीके लिये कोई एक ही पुस्तक पढ़ना चाहते हो तो गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीकी रामचरितमानस पढ़ो। उसमें पूरे सनातनधर्म एवं संस्कृतिका दर्शन हो जायगा। महाराजकी यह बात विशेष प्रेरणादायक थी।

श्रीरामचरितमानसमें महाराजश्रीकी अविचल श्रद्धा थी। एक बार उन्होंने कहा—गोस्वामी तुलसीदासजीका रामचरितमानस इतना शास्त्रसम्मत है कि उसकी किसी चौपाईपर रेखा नहीं खींची जा सकती। उनका आशय यह था कि शास्त्रीय दृष्टिसे यह पूर्ण निरापद ग्रन्थ है।

वैधी भक्ति और रागानुगा भक्ति

श्रावण शुक्ल सप्तमीपर प्रतिवर्ष तुलसी-जयन्तीका आयोजन श्रीतुलसीमानस-मन्दिर तथा तुलसीघाट-स्थित गोस्वामी तुलसीदासजीके अखाड़ेमें होता है, जहाँ महाराजश्री प्रायः प्रतिवर्ष पधारते थे। इस अवसरपर एक बार स्वामीजीने भक्तिका विवेचन करते हुए बताया कि भक्ति दो प्रकारकी होती है—वैधी भक्ति और रागानुगा भक्ति। वैधी भक्ति तो वह है, जिसमें शास्त्रविधिके अनुसार अपने आराध्यकी सेवा-पूजा और उपासना की जाय। रागानुगा भक्ति वह है कि व्यक्ति अपने आराध्य इष्टके बिना एक क्षण भी न रह सके—

अजातपक्षा इव मातरं खगाः
स्तन्यं यथा वत्सतरा क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा
मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥

(श्रीमद्भागवत ६। ११। २६)

जैसे पंखरहित पतंग-शावक अपनी माँको पानेके लिये व्याकुल रहते हैं, जैसे क्षुधार्त वत्सतर (छोटे गोवत्स) माँका दूध चाहते हैं, किंवा परदेश गये हुये प्रियतमसे मिलनेके लिये प्रेयसी विषण्ण होती है, हे कमलनयन! मेरा मन आपको देखनेके लिये वैसे ही उत्कण्ठित होता है।

इस प्रकार प्रगाढ़ प्रेमकी पराकाष्ठा ही रागानुगा भक्ति है।

भक्तके साथ भगवान् स्वतः आ जाते हैं

एक बार तुलसी जयन्तीके अवसरपर तुलसीघाटमें महाराजने कहा कि यदि भगवान्के भक्तको हृदयमें धारण कर लिया जाय तो भगवान् स्वतः हृदयमें आ जाते हैं। कारण, भक्तके हृदयमें भगवान् रहते ही हैं, इसलिये भक्तका प्रवेश जब हृदयमें होता है तो भगवान् भी प्रविष्ट हो जाते हैं। श्रीहनुमान्जी महाराजका उदाहरण प्रस्तुत करते हुए महाराजश्रीने कहा कि तुलसीदासजी महाराजने इसीलिये रामभक्त श्रीहनुमन्तलालजीसे हनुमानचालीसामें पाठके अन्तमें यह प्रार्थना की—

'पवन तनय संकट हरन मंगल मूरति रूप।
राम लखन सीता सहित हृदय बसहु सुर भूप॥'

भगवान् राम, लक्ष्मण और भगवती सीताके साथ आप मेरे हृदयमें विराजमान् हों। प्रभुसे यही वरदान माँगा। इस प्रकार भगवद्भक्तकी महिमाका वर्णन महाराजश्रीके द्वारा हुआ।

महाराजजी हँस पड़े

एक बार मैंने महाराजजीसे पूछा कि साधु-संन्यासीको रुपये-पैसेका दान देना तथा उन्हें लेना, दोनों ही शास्त्रोंमें निषिद्ध है। आवश्यकतानुसार साधुको वस्तु देनेका ही विधान है, परंतु आजकल तो बिना पैसा लिये साधु-संन्यासीका भी काम चलता नहीं। ऐसी स्थितिमें क्या करना चाहिये? इसपर महाराजजीने दो मिनट सोचकर कहा कि आजकल पैसे बिना काम चलता नहीं, इसलिये पैसा देना पड़े तो वस्तुका उद्देश्य बनाकर उसीके निमित्त पैसा देना चाहिये। इसी संदर्भमें मैंने महाराजश्रीको अयोध्याकी एक रोचक घटना सुनायी। अयोध्यामें कटरिया बाबा एक अच्छे महात्मा थे। उनकी आयु एक सौ वर्षसे भी अधिक थी। महाराजश्री भी उनसे परिचित थे। भगवन्नामोच्चारणका उनका बड़ा अच्छा अभ्यास था। जिह्वासे, तालुसे, कण्ठसे तथा हृदयसे वे उच्चस्वरमें भगवन्नामका उच्चारण करते थे तथा कभी-कभी अपने भक्तोंको भी यह प्रक्रिया बताते थे। सरयूजीके किनारे नया घाटपर उनका एक स्थान भी बना है। एक दिन मैं अयोध्यामें

सरयूजीका स्नान कर उनके स्थानपर गया तथा कुछ रुपये भेंटरूपमें उनके सामने रखे तो बाबाने अपने चिमटेसे उठाकर उस भेंटको अपनी झोलीमें डाल दिया। मैंने विचार किया कि शायद ये रुपये-पैसेका हाथसे स्पर्श नहीं करते होंगे। इसीलिये उन्होंने चिमटेसे अग्निकी तरह उठाकर झोलीमें रक्खा। मैंने यह बात महाराजको बतायी तो उन्होंने कुछ कहा तो नहीं पर वे इस बातपर बहुत हँसे।

दम्भसे दूर

महाराजश्रीमें लोक-दिखावेकी प्रवृत्ति नहीं थी। एक मठाधीश आचार्यकी चर्चा चली। उनके यहाँ साइनबोर्ड लगा था कि यहाँ रुपया-पैसा चढ़ाना मना है। पर उनके ठाट-बाट बहुत थे। रुपयोंका आवागमन भी था ही। उनके कुछ भक्त गुप्त रूपसे धन देते जिससे उनका काम चलता। पर वे सार्वजनिक रूपमें रुपया आदि नहीं लेते। यह बात महाराजको कम पसंद थी। जब रुपयेके बिना काम नहीं चलता तो केवल जनताको दिखानेके लिये रुपये नहीं लेना यह 'दम्भ' भी हो सकता है। त्याग-वैराग्य तो पूर्णरूपसे होना ही श्रेयस्कर है।

एक बार किसी भक्तने महाराजश्रीके ठाकुरजीको विराजमान करानेके लिये ५० तोलेके सोनेसे बना एक सुन्दर स्वर्ण-सिंहासन भेंट किया। इस प्रकार भगवान्के भोग-राग तथा पूजन आदिके लिये स्वर्ण-पात्र भी कुछ भक्तोंने बनवाये। उन दिनों पराम्बा भगवती राजराजेश्वरी त्रिपुरसुन्दरीकी राजोपचार-पूजा महाराजद्वारा सम्पन्न होती थी, जो विशेष दर्शनीय थी। कई दिनों बाद एक बार ब्रह्मचारीकी असावधानीसे स्वर्णसिंहासन तथा स्वर्णपात्र चोरी हो गये। इस घटनासे भक्तोंमें क्षोभ होना भी स्वाभाविक था। कुछ अन्तरंग भक्तोंने भगवान्के लिये स्वर्ण-सामग्रियोंके प्रयोगके सम्बन्धमें भी महाराजके समक्ष विभिन्न शंकाएँ प्रस्तुत कीं। महाराजने निःस्पृहभावसे यह उत्तर दिया कि जब मैं पैदल यात्रा करता था तथा गाड़ी आदिपर नहीं बैठता था, तब हमारे भगवान् भी काष्ठके सिंहासनपर विराजमान रहते थे तथा काष्ठादिके पात्रोंमें ही उनकी पूजा और भोग-राग भी होते थे। पर जब मैं मोटर-गाड़ी आदिका प्रयोग करने लगा तो मेरे भगवान्को भी स्वर्ण-सिंहासनमें क्यों नहीं विराजमान कराया जाय। पूजा-अर्चामें भक्ति-भावनाकी दृष्टिसे स्वर्णादि पात्रोंकी सार्थकता और महिमा

तो मात्र भगवत्सेवामें ही है। जहाँतक चोरी होनेकी बात है, यह तो संसारकी प्रकृति है। यहाँ कुछ ऐसे भक्त हैं जो श्रद्धापूर्वक स्वर्णादिके सिंहासन भगवान्‌के निमित्त अर्पण करते हैं, परंतु कुछ ऐसे भी लोग हैं जो चोरीसे उन्हें उठा ले जाते हैं। दोनोंको ही अपने किये हुए कर्मोंका फल मिलता है। अपने ठाकुरजीको तो इससे कोई अन्तर होना नहीं है, पर बादमें महाराजजीने विचारकर ठाकुरजीके सभी स्वर्णनिर्मित पात्रोंको श्रीकाशी-विश्वनाथ तथा अन्य मन्दिरोंमें समर्पित कर दिया तथा अपने ठाकुरजीकी पूजामें रजत-पात्रोंतकका ही प्रयोग करना उचित समझा।

व्यङ्ग्य-विनोदमें शिक्षाप्रद बातें

एक बार महाराजने विनोदपूर्वक एक कथा सुनायी। एक साधुका आश्रम था, जिसमें एक चेला भी रहता था। वह भगवान्‌का भक्त था। उसकी यह प्रकृति थी कि जब आश्रममें एकान्त रहता तो वह आसनारूढ होकर भगवान्‌की सेवा-पूजा और भक्तिमें ध्यानारूढ हो जाता और जब आश्रममें गुरुजीसे मिलने तथा दर्शन आदिके लिये बाहरके लोग आते तो वह चेला अपनी पूजा-पाठ छोड़कर आश्रमके अन्य कार्य करने लग जाता। इस बातसे गुरुजी महाराज बहुत नाराज होते और अपने चेलेपर बिगड़ते हुए कहते कि जब सब लोग चले जाते हैं तो फिर किसको पूजा-पाठ दिखाता है। जब आश्रमके दर्शनार्थी और मिलने-जुलनेवाले आते हैं तब तो तू इधर-उधरका काम करने लगता है और जब कोई नहीं रहता तो ध्यान लगाकर बैठ जाता है। यह तुम्हारा कितना मूर्खतापूर्ण कार्य है। पूजा-पाठ तो आश्रमकी शोभा है। पूजा-पाठ करना है तो भीड़के समय करना चाहिये, जिससे दूसरोंपर भी असर पड़े। अकेले-निर्जनमें करनेसे क्या लाभ? महाराजके इस व्यङ्ग्यात्मक विनोदपूर्ण कथनसे मुझे ऐसा लगा कि कभी आश्रम तथा मठोंमें भी गुरु बहिर्मुखी प्रवृत्तिके हो सकते हैं जो वास्तविक ज्ञानसे विमुख होते हैं तथा साधना और भगवत्संनिकटतासे उनका कोई सरोकार नहीं रहता। वैसे गुरुसे सत्-शिष्योंको आध्यात्मिक प्रेरणा तो मिलनी दूर रही, उसकी साधनामें कोई प्रगति होनेमें भी कठिनाई हो सकती है। ऐसे लोगोंका एक ही लक्ष्य होता है कि अधिकाधिक लोगोंको बाह्याडम्बरके द्वारा अपनी ओर आकृष्ट किया जाय।

इस प्रकार महाराज कभी-कभी व्यङ्ग्यात्मक विनोदपूर्ण बात सुनाकर भी शिक्षाप्रद उपदेश देते थे। एक दिन महाराज प्रसन्न-मुद्रामें बोले कि अयोध्याके कुछ आश्रमोंमें वैरागी साधुओंके भण्डारे चलते हैं, वहाँके नियमानुसार मंगलवारको श्रीहनुमान्‌जी महाराजके भोगका लड्डू उन साधुओंको वितरित किया जाता है। कई साधु तो लड्डूके लिये इस मंगलवारकी प्रतीक्षा भी करते हैं। इसके साथ ही उन आश्रमोंमें एकादशीके दिन व्रत रखा जाता है तथा क्षुधा-निवृत्तिके लिये एक समय कुछ फलाहार दे दिया जाता है। यह एकादशी-व्रत पंद्रहवें दिन होता है जबकि मंगलवार हर सप्ताह आता है, परंतु जिस दिन एकादशी होती है इस दिन कुछ साधु आपसमें बात करते हैं कि 'ससुरी एकादशी सिरपर चढ़ी रहती है और मंगलवारका पता भी नहीं रहता।' महाराजके इस व्यङ्ग्यपूर्ण वचनमें साधुवेशमें रहनेवाले भोजन-भट्ट लोगोंकी प्रकृतिका आभास मिलता है।

साधुमें स्वाभाविक आकर्षण

किसी प्रसंगमें महाराजने एक बार बताया कि साधुमें उनका जन्मजात आकर्षण था। बाल्यावस्थामें घरके पास कोई भी साधु आ जाता तो वे सब कुछ छोड़कर उनके पास चले जाते और स्नेहपूर्ण दृष्टिसे उसे देखते। साधुको देखकर उनके मनमें अत्यधिक उल्लास होता और यह बात मनमें आती कि मैं भी इसी प्रकार साधु बन जाता। मैंने पूछा कि महाराज बाल्यावस्थामें तो यह स्थिति थी, पर बादमें उनके सम्पर्कमें आनेपर क्या स्थिति बनी। तब वे बोले—बादमें तो साधुवेशमें रहनेवालोंके भी गुण-दोष सामने आने लगे और उनकी मीमांसा भी होने लगी।

महाराजश्री यह भी कहते थे कि हमारे पास कई ऐसे युवक और किशोरावस्थामें ब्रह्मचारी-वेशमें भी लोग आते हैं तथा साधु बननेकी इच्छा प्रकट करते हैं, परंतु अपनी ओरसे हम कभी भी उन्हें साधु बननेकी प्रेरणा नहीं करते। यथासम्भव गृहस्थ बननेकी ही प्रेरणा करते हैं। यदि वह अविवाहित होता है तो उसे विवाह करनेका परामर्श देते हैं। सद्‌गृहस्थ होकर धर्माचरण करना भी कम महत्त्वकी बात नहीं है। संसारसे उत्कट वैराग्य और परमात्मामें अविचल आस्था होनेपर ही व्यक्ति साधु बनने योग्य होता है। महाराजकी इस बातका

तात्पर्य मैंने यह समझा कि यदि अन्त:करणमें थोड़ी भी संसारकी वासना छिपी होती है तो वह साधुके लिये पतनका कारण बन सकती है। इसलिये साधुको और सद्गृहस्थको निरन्तर सत्संगकी आवश्यकता है।

पूर्ण श्रद्धावान्‌को ही साधुके निकट रहना चाहिये

किसी संदर्भमें महाराजजीने अपने एक भक्तसे कहा कि साधु या गुरुके संनिकट रहनेका अधिकारी केवल वही व्यक्ति है, जिसमें पूर्ण श्रद्धाका समावेश हो। जो पूर्ण श्रद्धावान् नहीं होता उसे महात्माके अत्यन्त संनिकट रहनेसे पद-पदपर शंका और अश्रद्धा होनेकी भी सम्भावना हो सकती है, जिससे उसका कोई लाभ हो नहीं सकता। इसलिये वैसे लोगोंको मध्यम भावसे ही महात्माका आश्रय लेना चाहिये अर्थात् सत्संग-कथा-वार्तामें सम्मिलित होना चाहिये, जिससे उसकी श्रद्धामें कमी नहीं आये।

मौकेकी सूझ

बातचीतके क्रममें एक दिन महाराजश्रीने कहा कि 'देखो! मौकेपर जो चूक जाता है, वह फिर लौटता नहीं। मौकेपर किये गये किसी भी कार्यका महत्त्व बहुत अधिक हो जाता है। इस संदर्भमें महाराजजीने एक कथा सुनाते हुए कहा कि उद्दालक नामके एक ऋषि थे। अकस्मात् उनके पिताका देहान्त हो गया। मुनिने अपने पिताकी अन्त्येष्टि चन्दनकी लकड़ीकी चितापर करनेका विचार किया, पर चन्दनकी लकड़ी उनके पास तो थी नहीं, वे धर्मराज युधिष्ठिरके यहाँ पहुँचे और उनसे चन्दनकी लकड़ीकी याचना की। धर्मराजके पास चन्दनकी लकड़ीकी तो कमी नहीं थी, परंतु अनवरत वर्षा होनेके कारण लकड़ी गीली थी। मुनिने कहा कि मुझे तो चन्दनकी सूखी लकड़ी चाहिये। इससे धर्मराज युधिष्ठिरको अपनी असमर्थता व्यक्त करनी पड़ी। वहाँसे मुनि राजा कर्णके पास पहुँचे। वहाँ भी अनवरत वर्षा होनेके कारण चन्दनकी गीली लकड़ी ही उपलब्ध थी, परंतु मुनिने कहा कि मुझे तो चिताके लिये चन्दनकी सूखी लकड़ी चाहिये। इसपर राजा कर्णने अपने दरबारियोंको बुलाकर यह आदेश दिया कि चन्दनसे बने मेरे सिंहासनको तुरंत खोल दिया जाय तथा इसे काटकर चिताके लिये इसकी

लकड़ी मुनि-बालकको दे दी जाय। दरबारियोंके पूछनेपर राजा कर्णने कहा कि चन्दनकी लकड़ीका सिंहासन तो फिर बन जायगा; परंतु चिताका कार्य तो अभी ही होना है। इस प्रकार मुनि बालकको अपने पिताकी चिताके लिये चन्दनकी सूखी लकड़ी प्राप्त हो गयी। महाराजने कहा कि धर्मराज युधिष्ठिरके पास भी चन्दनका ही सिंहासन था तथा वे राजा कर्णसे कम दानी भी नहीं थे। परंतु मौकेपर जो सूझ राजा कर्णको आयी वह युधिष्ठिरको नहीं आ सकी इसलिये दानवीरकी उपाधि राजा कर्णको ही प्राप्त हुई, धर्मराज युधिष्ठिरको नहीं। अत: मौकेपर किये गये कार्यका बड़ा महत्त्व है।

मैं अपनी दूकान समेट रहा हूँ और वे लगा रहे हैं

वैसे तो महाराजजीकी प्रवृत्ति प्रारम्भसे ही अन्तर्मुखी थी, परंतु जनकल्याणके लिये धर्म-रक्षार्थ लोक-संग्रहकी दृष्टिसे जागतिक कार्योंमें भी जो अभिरुचि महाराजने ली, वह विवेकपूर्वक योजनाबद्ध थी। इस जीवनमें कितने समय कौन-सा कार्य सम्पन्न करना है यह सब महाराजश्रीकी बुद्धिमें निर्धारित था।

एक बार एक जैन मुनि वाराणसी पधारे। वे लगभग एक मासतक वाराणसीमें ठहरे। कई प्रकारके चमत्कार उन्होंने यहाँ दिखाये। अखबारोंमें भी उनके चमत्कारोंकी प्रशंसा छपा करती। उनका नागरिक अभिनन्दन भी किया गया। महाराजश्री भी उन दिनों वाराणसीमें ही थे। उनसे भी उनके चमत्कारोंकी चर्चा होती थी। महाराज भी कौतूहलपूर्वक उनके चमत्कारोंकी बात सुनते। एक दिन अकस्मात् जैन मुनि महाराजजीसे मिलने श्रीवृन्दावन विहारीभवन पधारे। रात्रिमें महाराजने मुझसे कहा कि आज जैन मुनि आये थे। मैंने पूछा—'उनसे क्या बातचीत हुई!' महाराजजीने कहा कि वे कहते थे कि 'आपका सहयोग हमें मिल जाय तो हमलोग भारतीय संस्कृतिके उन्नयनके लिये बहुत कार्य कर सकते हैं और भारतीय संस्कृतिकी बहुत उन्नति हो सकती है।' मैंने महाराजजीसे कहा कि 'इसमें हर्ज भी क्या है, यदि वे अपने सिद्धान्तोंके अनुसार कार्य करें तो उन्हें सहयोग देनेमें क्या कठिनाई है?' तब महाराजने कहा कि 'भाई! उनका-हमारा मेल कैसे बैठ सकता है—जैसे तुम लोग सबेरे अपनी दूकान लगाते हो और शामको अपनी दूकान समेटते हो वैसी ही वे तो अपनी दूकान लगा रहे हैं और

में समेट रहा हूँ। तब दोनोंका मेल कैसे बैठ सकता है। महाराजकी यह बात सुनकर मैं चकित रह गया और सोचने लगा कि महाराजश्रीके कार्यक्रम कितने योजनाबद्ध हैं। जीवनका कितना क्षण किस कार्यमें लगाना है, यह विवेकपूर्वक विचारकर ही वे निर्धारित करते थे।'

बिना कष्ट प्रारब्धका भोग

एक बार महाराजश्रीने मोटरद्वारा वाराणसीसे वृन्दावनके लिये प्रस्थान किया। महाराजजीकी गाड़ी प्राय: रात्रिमें ही चलती थी तथा रात्रि एक बजे उनके जागरणके समय रोक दी जाती थी। कानपुरसे आगे कुछ दूर पर रात्रिमें गाड़ीका एक्सीडेन्ट हो गया। गाड़ी किसी वृक्षसे टकरा गयी। गाड़ी तो पूरी तरह नष्ट हो गयी। महाराजश्रीको भी चेहरेपर कुछ चोट आयी। महाराजश्री उस समय पीछेकी सीटपर शयन कर रहे थे। वहां आस-पासके गाँववालोंकी भीड़ लग गयी। भीड़के लोगोंने महाराजको जगाया। महाराजजी जब वृन्दावनसे वाराणसी लौटे तब उनका चेहरा देखकर मुझे अत्यधिक आश्चर्य हुआ कि महाराजश्रीको इतनी चोट कैसे लग गयी। तब महाराजने मुझे मोटर-दुर्घटनाकी सब बातें बतायीं तथा कहा कि इस बार मुझे यह अनुभव हुआ कि कभी-कभी भगवान् बिना कष्ट हुए ही प्रारब्धका भोग भुगता देते हैं। महाराजजीने बताया कि एक्सीडेन्टके समय तो मैं नींदमें ही था। बाहरके लोगोंने जब मुझे उठाया तब मुझे मालूम हुआ कि गाड़ीका एक्सीडेन्ट हो गया है। महाराजको देखनेसे ऐसा लगता था कि उन्हें काफी चोट आयी है। पर उन्होंने कहा कि इस बार मुझे इस चोटसे कोई कष्ट या दर्दका अनुभव नहीं हो रहा है, यद्यपि उसको ठीक करनेका उपचार चल रहा था। भगवत्कृपासे गाड़ीके नष्ट हो जानेपर भी ड्राइवर और साथ बैठे ब्रह्मचारीको भी चोट नहीं आयी। वे लोग भी सुरक्षित बच गये। यह सब स्वामीजीकी साधना और प्रभु-कृपाका ही फल था।

अस्वस्थतामें अन्तमुर्खी वृत्ति

एक दिन प्रात:काल वृन्दावन विहारीभवनमें अपनी साधनामें संलग्न सूर्य-नमस्कार करते हुए महाराजश्री अचेत हो गये। उन्हें तत्काल केदारघाटस्थित

वेदशास्त्रानुसंधान-केन्द्रपर ले जाया गया, जो महाराजद्वारा संस्थापित स्थान है। महाराजकी विशेष अस्वस्थताके कारण देशके कोने-कोनेसे दर्शनार्थ आनेवालोंका ताँता लग गया। महाराजका उपचार पं० ब्रजमोहनजी दीक्षितद्वारा आयुर्वेदिक पद्धतिद्वारा चलता रहा। डॉक्टरी दवा देनेका तो कोई प्रश्न ही नहीं था। इक्कीस दिनोंतक लगातार महाराजश्रीकी अचेतनावस्था बनी रही। इन दिनों महाराजको बाह्य ज्ञान एकदम नहीं था। वे किसीको भी पहचानते नहीं थे, परंतु बीच-बीचमें रामायणकी चौपाई बोलते जाते—**'जय जय गिरिबर राजकिसोरी....।'** इस अर्धालीको उन्होंने कई बार दोहराया तथा राम-नामका उच्चारण भी महाराजद्वारा होता रहता। ये सब घटनाएँ विलक्षण थीं। ऐसा लगता था कि महाराजश्रीने अपनी बाह्य चेतनाको समेटकर कुछ समयके लिये अन्तर्मुखी वृत्ति धारण कर ली है। परंतु भक्तजन इसे समझ नहीं पा रहे थे। सभी चिन्तित थे। पुरीपीठाधीश्वर शंकराचार्य निरंजनदेवतीर्थजी महाराज तत्कालीन ज्योतिष्पीठाधीश जगद्गुरु स्वामी श्रीस्वरूपानन्द सरस्वतीजी महाराज, सुमेरु पीठाधीश्वर शंकराचार्य स्वामी श्रीशंकरानन्द सरस्वतीजी महाराज, शास्त्री स्वामी तथा महाराजके अन्य भक्तगण वहाँ निरन्तर उपस्थित रहते। दर्शनार्थ बाहरसे आनेवाले भक्तोंका भी ताँता बँधा रहता था। २१ दिनोंतक यह क्रम चलता रहा। २१ दिनोंके बाद अचानक महाराजकी चेतना लौट आयी। चेतना लौटनेपर महाराजने सर्वप्रथम कहा—'मुझे विष्णुसहस्रनाम सुनाओ।' यह सुनाया गया। इसके बाद ही महाराजने कहा—'गजेन्द्रमोक्ष सुनाओ।' भक्तोंमें प्रसन्नताकी लहर छा गयी। सभी आनन्दमग्न हो गये। महाराज बिस्तरपर उठकर बैठ गये तथा पाठ सुननेकी इच्छा व्यक्त की। यद्यपि कुछ समय उन्हें सुनाया भी गया तथा भक्तजनोंने आग्रह किया कि महाराजजी आप सो जायँ। वैद्यजीने विश्राम करनेको कहा है। इन सबका महाराजश्री दार्शनिक भाषामें आध्यात्मिक उत्तर देते थे, जिसे सुनकर सभी लोग आश्चर्यचकित हो जाते थे। वे कहते—'हाँ भाई! ठीक कहते हो, जीव अबतक सोया है, उसे जगना चाहिये।' उनसे जब विश्रामके लिये कहा गया तो उन्होंने उत्तर दिया कि 'विश्राम तो भगवत्स्मरण और भगवच्चिन्तनमें

ही है।' महाराज जब स्तोत्रादि सुनानेका आग्रह बार-बार करते तब यह समझकर कि इससे मानसिक श्रम अधिक पड़ेगा, उनसे निवेदन किया गया कि वैद्यजीने स्तोत्र आदि सुनानेके लिये मना किया है। तब महाराजश्रीने कहा—'तब तो वैद्यजीको कोई दूसरा रोगी खोजना चाहिये।' इस प्रकार अन्तर्मुखी वृत्तिसे बहिर्मुखी वृत्तिमें आनेपर भी महाराजजीमें आध्यात्मिक भावना ही प्रधान थी।

देखो! उस नाड़ीका क्या हाल है जिस नाड़ीमें राम-नाम चलता हो

इन्हीं दिनोंमें एक बार कलकत्तासे पधारे हुए महाराजके ही एक भक्त कविराज श्रीसीतारामजी शास्त्री वैद्यने महाराजकी नाड़ीका परीक्षण करना चाहा। इसके लिये उन्होंने महाराजकी नाड़ी अपने हाथमें ली। महाराजने पूछा कि क्या देखते हो। तब उन्होंने कहा—महाराज, मैं आपकी नाड़ी देखना चाहता हूँ। तब उन्होंने उत्तर दिया—'देखो उस नाड़ीका क्या हाल है, जिस नाड़ीमें राम-नाम चलता हो। महाराजकी यह बात सुनकर कविराजजी स्तब्ध रह गये। उन्होंने भक्तजनोंसे कहा—जिस नाड़ीमें राम-नाम चलता हो, उस नाड़ीको देखनेकी मेरी क्या ताकत है?'

महाराजकी परमहंसी अवस्था

लोकदृष्टिसे महाराजश्रीके स्वास्थ्यमें धीरे-धीरे सुधार होने लगा। महाराजश्रीके सभी भक्तगण जो बाहरसे भी पधारे हुए थे, महाराजसे मिलनेके लिये उत्सुक थे। महाराज सबसे मिले और उन्होंने सबको आशीर्वाद भी दिया। परंतु महाराजश्रीके स्वभाव, कार्य-कलाप और चर्यामें परिवर्तन दिखायी देने लगा। उनकी अन्तर्मुखी-वृत्ति स्पष्टरूपसे मुखरित हो रही थी। पहले जहां उन्होंने धर्मके प्रचार-प्रसार और सुरक्षामें राष्ट्र, समाज, राजनीति और देश-सेवामें स्वयंको समायोजित कर रखा था, वहां अब उन्होंने सब ओरसे स्वयंको समेटकर एकमात्र भगवदीय वृत्तियोंमें नियोजित कर दिया। अब महाराजके पास संसारके कार्योंमें समय व्यतीत करनेके

लिये अवकाश नहीं था। भक्तजन भी मिलने आते, दर्शनार्थियोंकी भीड़ रहती तब भी महाराज दो-चार मिनटसे अधिक वहाँ अधिक ठहर नहीं पाते। वे उठकर अपने कक्षमें चले जाते और भगवच्चिन्तनमें संलग्न हो जाते। पहले वे मिलनेवालोंसे 'पधारो' कहकर जानेका संकेत भी कर देते थे, पर अब किसीको भी जानेके लिये नहीं कहते, बल्कि स्वयं ही उठकर अपने एकान्त कक्षमें चले जाते। पहले कभी-कभी अपने निकटतम भक्तजनोंसे उनकी विशेष गलती पर नाराज भी हो जाते। यहांतक कि उनसे भाषण करना भी बन्द कर देते। पर अब महाराजने अपनी ओरसे सबको क्षमा प्रदान कर दिया। अब सभी लोग महाराजके पास निःसंकोच भावसे आ सकते थे तथा कुछ भी बोल सकते थे। महाराजश्रीके स्वभावमें स्पष्ट बदलाव मालूम पड़ता था। अब उन्हें किसी व्यक्तिमें दोष-दर्शन नहीं होता। बच्चों-जैसा स्वभाव बन गया था। वे किसीकी भी निन्दा-स्तुति सुननेको तैयार नहीं थे और न इसका उनपर कोई प्रभाव था। उनकी परमहंसी अवस्था बन चुकी थी। सांसारिक राग-द्वेषरहित अजातशत्रुके रूपमें वे सबको उपलब्ध थे। बाह्य ज्ञान उनका सीमित हो चुका था। अब वे अन्तर्जगत्में विचरण करने लगे। आवश्यक बहिर्मुखी कार्योंके लिये भक्तजनोंका एक मण्डल सहायतार्थ प्रस्तुत था।

महाराजश्रीने यह निर्णय लिया कि केदार-क्षेत्रकी सीमासे बाहर नहीं जायँगे। वैद्योंके परामर्शानुसार कुछ दूरीका भ्रमण भी महाराज केदार-क्षेत्रमें ही करते। अब वे तुलसीका एक छोटा गमला, गङ्गाजल और अपने भगवान्‌को निरन्तर साथ रखते। भ्रमण आदिके कार्यक्रममें भी यह सब साथ ही रहता। तुलसीका गमला, गङ्गाजल और भगवान्‌को दो व्यक्ति साथ लेकर चलते। महाराजका यह विश्वास था कि शरीर किसी भी समय जा सकता है। अन्तिम समयमें गङ्गाजल, तुलसी और शालग्राम निकट रहने चाहिये। इसीलिये महाराज इन्हें निरन्तर साथ रखते थे।

एक बार संत श्रीडोंगरेजी महाराजने काशीमें कथा करनेकी इच्छा व्यक्त की। ज्ञानवापीपर फाल्गुन शुक्ल तृतीयासे कथाका कार्यक्रम निश्चित

हो गया। उनकी यह भावना थी कि महाराजश्रीके द्वारा कथाका उद्घाटन कराया जाय। मैंने महाराजजीसे निवेदन किया कि डोंगरेजी महाराजकी यह इच्छा है कि उनकी कथाका उद्घाटन आपके द्वारा होना चाहिये। महाराजश्रीने अनायास तुरंत यह उत्तर दिया—'मुझे समय कहाँ है? मुझे तो अब जाना है।' इतना कहकर महाराज कुछ संभले और बोले—'डोंगरेजी महाराज एक महान् संत हैं। उनकी कथा तो मैं भी सुनूँगा। मैंने कहा—'महाराज! आपको तो अब आदमी सुहाता ही नहीं। कथामें तो भीड़ रहेगी। आप कैसे सुन सकेंगे' तब महाराजश्रीने कहा—'हाँ भाई! यह तो तुम ठीक कहते हो। आजकल मुझे कोई नहीं सुहाता। पर तुम लोग तो हमारे हाथ-पैर हो, इसलिये कोई बात नहीं रहती। पर मेरे स्थानपर ध्वनिविस्तारक यन्त्र लगा देना, उससे मैं भी कथा सुन लूँगा।'

मौनी अमावस्यापर प्रयाग-प्रवास

महाराजश्रीका नियम था कि वे कहीं भी रहें पर माघ कृष्ण ३० (मौनी अमावस्या)-पर वे प्रयागराज त्रिवेणी-संगमपर अवश्य पधारते थे तथा कम-से-कम लगभग एक सप्ताह वहाँ निवास भी करते थे। संगम-क्षेत्रमें अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघकी ओरसे विशाल पण्डाल बनता था, जिसमें महाराजश्रीका प्रवचन होता था तथा धार्मिक एवं आध्यात्मिक शंकाओंका समाधान महाराजके द्वारा किया जाता था। देश-विदेशके लोग वर्षभरकी अपनी धार्मिक शंकाओं और प्रश्नोंको सँजोकर यहाँ लाते और उनका शास्त्रीय समाधान प्राप्त कर कृतकृत्य हो जाते।

इस बार काशी न छोड़नेका संकल्प होनेके कारण महाराजश्री पहली बार मौनी अमावस्यापर प्रयागराजमें अनुपस्थित रहे।

महाराजश्रीका महाप्रयाण

इन दिनों महाराजश्रीका स्वास्थ्य तो सामान्य रूपसे दुर्बल था ही, परंतु माघ शुक्ल दशमीको एकाएक महाराजकी एक आँखमें असह्य पीड़ा प्रारम्भ हो गयी। डॉक्टरोंने इसे 'ग्लूकोमा'का प्रकोप बताया तथा इसके ठीक

होनेके लिये आपरेशनकी आवश्यकता बतायी। दो दिनोंके बादका समय ऑपरेशनके लिये निर्धारित कर लिया गया। माघ शुक्ल एकादशी शुक्रवारकी रात्रिमें केदारघाट-स्थित भवनमें महाराजश्रीसे मेरी डेढ़ घंटेतक विभिन्न विषयोंपर बातचीत हुई। उस समय महाराजश्री आँखकी असाध्य पीड़ासे पीड़ित थे। आँखकी चिकित्सासे सम्बन्धित कुछ वार्तालाप चल रहा था। इसी बीच स्वामी जगन्नाथानन्द सरस्वतीजी जो महाराजके ही शिष्य थे, उन्होंने आँखकी पीड़ाके सम्बन्धमें महाराजसे कहा कि आपको तो कोई पीड़ा है नहीं। कारण कि आप तो न शरीर हैं, न इन्द्रिय हैं, न मन हैं और न बुद्धि हैं। आप तो सच्चिदानन्द-स्वरूप हैं, तब आपको पीड़ा कैसे हो सकती है? तब महाराज कुछ हँसे और विनोदके स्वरमें बोले—'हाँ भाई! मैं भी वेदान्तकी ये सब बातें बहुत कहता हूँ, पर जब अपनेपर पड़ता है, तब सब मालूम होता है। इसके बाद ही महाराजने लगभग पंद्रह मिनट तक वेदान्तका एक सारगर्भित व्याख्यान बड़े सुन्दर ढंगसे प्रस्तुत किया, जिसे सुनकर वहाँ उपस्थित हम सभी लोग भाव-विह्वल हो गये। वह अमूल्य व्याख्यान टेप तो हो नहीं सका और अब मुझे स्मरण भी नहीं है। यह महाराजश्रीका अन्तिम व्याख्यान था।'

उस दिन महाराजश्रीसे विभिन्न विषयोंपर चर्चा हुई। वार्ताके क्रममें महाराजने कहा कि अब हम लोग इस समयकी संस्थाओंके योग्य नहीं हैं। इस संसारके लायक हम लोग नहीं हैं। तब मैंने कहा—महाराज! आप ऐसा क्यों कहते हैं? अभी आपको बहुत कार्य करना है। पर महाराजजीने इसे स्वीकार नहीं किया और कहा कि नहीं, अब जानेका विचार है। यहाँका सब कुछ देख लिया, अब तो वहाँ (परलोक)-का सब देखना है।

एक दिन बाद माघ शुक्ल त्रयोदशी रविवारको प्रात: लगभग ८ से ९ बजेके बीचमें महाराजश्री स्नान-पूजासे निवृत्त होकर केदारघाट-स्थित भवनमें ऊपर मंजिलके अपने पूजा-कक्षमें बैठे दुर्गासप्तशतीका पाठ सुन रहे थे। उसी समय अनायास बिना किसी पूर्वाभासके महाराजश्री अपने नश्वर

शरीरका परित्याग कर ब्रह्मीभूत हो गये। महाराजजीने किसी समय एक प्रसंगमें कहा था कि संत-महात्माओंको शरीर एकान्तमें छोड़ना चाहिये, जहाँ कोई न हो। ऐसा लगा कि अन्तिम समयकी महाराजकी यह भावना भी पूरी हो गयी। कारण, उस समय कक्षमें पाठकर्ताके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं था।

अनायासेन..........

महाराजश्रीकी ब्रह्मीभूत होनेकी सूचना बिजलीकी तरह सर्वत्र फैल गयी। उन दिनों प्रयागराजमें संगम-तटपर माघमेला और सत्संग चल रहा था। देशके कोने-कोनेसे पधारे संत-महात्मा और आचार्योंके शिविर वहाँ लगे थे। ज्यों ही यह समाचार वहां पहुंचा, सामान्यजनोंमें शोककी लहर व्याप्त हो गयी। शिविरोंके कार्यक्रम प्रायः स्थगित कर दिये गये। प्रायः सभी पण्डालोंमें ध्वनि-विस्तारक यन्त्रद्वारा महाराजके कर्तृत्व और जीवनपर व्याख्यान होने लगे। मैं भी उसी दिन प्रातः काशीसे प्रयागराजके लिये प्रस्थान कर चुका था। वहाँ पहुंचनेपर संगम-तटपर अवस्थित अपने कैम्पमें मेरे पूज्य पिताजीने रुँधे कण्ठसे यह समाचार सुनाया। अचानक यह सुनकर मैं भी स्तम्भित रह गया। हम सब लोग तत्काल शिविर उठाकर वहाँसे काशीके लिये प्रस्थान कर गये।

महाराजश्रीके ब्रह्मीभूत होनेका समाचार रेडियो और टी० वी०द्वारा प्रसारित हो जानेके कारण सर्वत्र फैल गया। महाराजके पार्थिव शरीरके अन्तिम दर्शनार्थ देश-विदेशके संत-महात्माओंका ताँता केदारघाट-स्थित गङ्गातटपर लग गया। संत प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी, पुरीपीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य, ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरुशंकराचार्य तथा अन्य सम्प्रदायोंके आचार्यगण वहाँ समुपस्थित हो गये। धार्मिक जगत्में एक अन्तर्व्यथा-जैसी स्थिति बन गयी। दूसरे दिन प्रातःकाल टाउनहालके मैदानसे एक शोभायात्रा निकाली गयी। जिसमें एक गाड़ीपर वैकुण्ठयान सजाकर महाराजका पार्थिव शरीर अवस्थित किया गया। यानपर सभी आचार्य अवस्थित थे।

बैण्डबाजे और घुड़सवारोंके साथ लाखोंकी संख्यामें धार्मिक जनता महाराजश्रीकी अन्तिम यात्रामें साथ चल रही थी। 'धर्मकी जय हो! अधर्मका नाश हो! प्राणियोंमें सद्भावना हो। विश्वका कल्याण हो! गौ माताकी जय हो! अनन्तश्री करपात्रीजी महाराजकी जय हो! हर हर महादेव!' के नारेसे आकाश गूँज रहा था। नगरका पूरा बाजार और कामकाज उस दिन बन्द था। गङ्गातटपर पहुँचकर महाराजश्रीका पार्थिव शरीर यानसे उतारा गया और नौकाओं एवं बजरे (कमरेदार बड़ी नाव)-पर अवस्थित किया गया। जनता भी विभिन्न नौका और बजरोंपर सवार हो गयी। महाराजश्रीका षोडशोपचार पूजन वैदिक विधिसे सम्पन्न हुआ। शंखद्वारा ललाटपर ब्रह्माण्डका परिच्छेदन किया गया। अन्त्येष्टिका सब कार्य पुरीपीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीनिरंजनदेवतीर्थजीने स्वयं अपने हाथोंसे किया। संगमरमर-प्रस्तरकी मंजूषामें महाराजश्रीका पार्थिव शरीर अवस्थित कर, केदारेश्वरके समक्ष गंगाकी मध्यधारामें महाराजश्रीको जलसमाधि प्रदान की गयी। वहाँ उपस्थित जनसमुदायने अश्रुपूरित नेत्रोंसे आध्यात्मिक जगत्के मार्गदर्शक अभिनव शंकराचार्य 'करपात्रस्वामी' को अपनी अन्तिम विदाई दी। भक्तजनोंने तथा आचार्योंने तत्काल गङ्गाकी मध्यधारामें कूदकर अवभृथ-स्नान किया। कुछ भक्तजनोंने घाटके किनारे सीढ़ियोंपर उतरकर स्नान किया। शास्त्रकी यह मान्यता है कि किसी महान् संत, संन्यासी तथा गुरुकी जलसमाधिके अनन्तर तत्काल उस नदीमें स्नान करनेका अनन्त पुण्य होता है। संन्यासीके शवको स्पर्श करनेपर अपवित्रता भी नहीं होती। कारण, वे नारायणस्वरूपमें अवस्थित होते हैं। और्ध्वदैहिक कार्योंके अनन्तर माहेश्वर-बलि, पार्वण श्राद्ध, भण्डारा आदि सभी कार्य पूर्ण शास्त्रीय विधिसे सम्पन्न कराये गये। इस प्रकार अनन्तश्री स्वामी करपात्रीजी महाराजजीकी जीवन-लीलाका संवरण होकर सदा-सर्वदाके लिये पटाक्षेप हो गया।

व्यक्तिके जीवनकालमें उसकी महत्तासे सामान्यजन पूर्णतः परिचित नहीं हो पाते। महाराजश्री अपने जीवनकालमें भक्तोंके लिये तथा सर्व-

सामान्यजनोंके लिये अत्यधिक सुलभ थे। लीला-संवरणके बाद उनके भक्तजनोंने यह अनुभव किया कि वे एक महान् संत, विचारक, शास्त्र-ज्ञाता, महापुरुषसे रहित हो गये हैं। जिसकी पूर्ति 'भूतो न भविष्यति' के रूपमें असम्भाव्य ही है।

अनन्तश्री स्वामी करपात्रीजी महाराज एक युगपुरुष थे। एक जीवनमें इन्होंने जितना कार्य सम्पन्न किया, वह किसी सामान्य व्यक्तिके वशकी बात नहीं थी। ऐसा लगता था कि पूर्वजन्मकी विद्या तथा तपस्या इनके साथ पूर्णरूपसे संलग्न थी। गृहस्थीसे लेकर विरक्तिकी सम्पूर्ण यात्रा इन्होंने एक मंजिलके रूपमें तय की। प्रारम्भिक दिनोंमें ये बहुत थोड़े ही दिन गृहस्थीमें रह सके। जन्मजात साधुताके कारण इन्हें साधु बननेकी प्रेरणा अदृश्य शक्तिद्वारा बाल्यावस्थासे ही प्राप्त थी। अल्प समयमें ही इन्होंने विद्यार्जन किया। एक बार जो ग्रन्थ सुनते या पढ़ते, वह उन्हें सहज ही आत्मसात् हो जाता। शास्त्रकी गुत्थियोंको ये स्वयं सुलझाते। इनके विद्यागुरु स्वामी श्रीविश्वेश्वरानन्दजी महाराज भी इनकी असीम प्रतिभाको देखकर आश्चर्यचकित थे। तत्कालीन ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु स्वामी श्री ब्रह्मानन्दजीने भी महाराजकी प्रतिभाको पहचाना और प्रयासपूर्वक इन्हें दण्ड ग्रहण कराया। उन दिनों इनमें वैराग्यकी पराकाष्ठा थी। गङ्गा-किनारे एक लँगोटी लगाकर रहते, सवारीपर चलते नहीं, कई दिनोंपर भिक्षामें केवल दूध 'कर' द्वारा ग्रहण करते। बादके दिनोंमें सनातनधर्मकी रक्षामें वे एक सजग प्रहरीके रूपमें भारतवासियोंको प्राप्त हुए। देशमें सामाजिक, राजनीतिक, राष्ट्रीय और धार्मिक नीतियोंमें शास्त्र-विपरीत किसी भी आचरणका उन्होंने दृढ़तासे विरोध किया। यहांतक कि इसके लिये जेलकी यातनाएँ भी सहन कीं। वास्तवमें सामान्यजन उनके बाह्यस्वरूपसे ही परिचित हो सके। उनके अन्त:स्वरूपको बहुत थोड़े लोग पहचान पाये।

यह प्रतीत होता था कि महाराजश्रीके जीवनका सम्पूर्ण कार्य योजनाबद्ध रूपमें है। गृहस्थीके बाद तपोमय साधनापूर्ण जीवन, धर्मसंघकी स्थापना, यज्ञ-युगका प्रारम्भ, सर्ववेद-शाखा-सम्मेलन, धार्मिक महाधिवेशन, रामराज्य-

परिषद्के द्वारा राजनीतिमें प्रवेश, हिन्दू कोड बिलका प्रबल विरोध तथा गो-हत्या-बंदी आँदोलनका संचालन आदि संपूर्ण कार्य महाराजश्रीके द्वारा सार्वजनिक जीवनमें सम्पन्न हुए। देशमें धार्मिक जगत्की महान् विभूतियोंको एक मंचपर लानेका श्रेय महाराजश्रीको ही था।

उन दिनों राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघके सर संघ-संचालक श्रीमाधवराव सदाशिव गोलवरकरजी भी स्वामीजीसे मिले। उनकी यह भावना थी कि हिन्दू संगठनको सुदृढ़ करनेकी दृष्टिसे हिन्दू जगत्के सभी नेता एक मंचपर आ जायँ तथा स्वामीजी महाराजका आशीर्वाद जनसंघको प्राप्त होता रहे। परंतु वर्णाश्रम-व्यवस्था और मर्यादाके विपरीत राजनीति महाराजश्रीको स्वीकार नहीं थी। वे मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके रामराज्यकी शासनपद्धतिके अनुसार शास्त्रीय विधिसे भारतमें राज्य-शासन-संचालनके पक्षधर थे और इसीमें वे जगत्का कल्याण मानते थे। अत: इस संदर्भमें कोई समझौता होना सम्भव नहीं था।

जीवनके उत्तरार्धमें महाराजश्रीने धर्मके बहिर्मुखी कार्योंसे स्वयंको समेटना प्रारम्भ कर दिया। अब महाराजश्रीकी रुचि लेखन-कार्यकी ओर अधिक हो गयी। महाराजश्रीने वेदपर भाष्य लिखना प्रारम्भ किया। सर्वप्रथम 'वेद-भाष्य-भूमिका' नामक एक बृहद् ग्रन्थकी रचना महाराजके द्वारा हुई। जिसमें लगभग एक हजार पृष्ठ हैं। इस ग्रन्थमें महाराजने वेदसे सम्बन्धित अबतकके सभी प्रकारके आरोपोंका एवं आर्यसमाजके प्रवर्तक स्वामी दयानन्दके सम्पूर्ण आक्षेपोंका निराकरण करते हुए प्राचीन ऋषि-महर्षि-प्रणीत परम्परा-प्राप्त सिद्धान्तोंका बड़े समारोहसे प्रतिपादन किया। इस ग्रन्थका विमोचन वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालयमें, वहाँके चान्सलर काशिराज डॉ० विभूतिनारायण सिंहके द्वारा सम्पन्न हुआ। श्रीराधाकृष्ण धानुका प्रकाशन-संस्थानकी ओरसे इस ग्रन्थका प्रकाशन हुआ। तदनन्तर महाराजश्रीने सम्पूर्ण शुक्ल यजुर्वेदपर भाष्य-टीकाका प्रणयन किया। ऋग्वेदपर भाष्य लिखा। वेदपर भाष्य महाराज स्वयं लिखते थे। एक दिन केदारघाट-स्थित भवनकी छतपर बैठे महाराज वेदपर भाष्यपर लिख रहे

थे। मैं भी वहाँ पहुँच गया। बातचीतके क्रममें मैंने महाराजश्रीसे पूछा कि महाराज इसे लिखनेमें बहुत समय लगता होगा। स्वामीजी महाराजने उत्तर दिया—हा! भाई बड़ा समय लगता है। जितनी बातें मेरी बुद्धिमें हैं वे एक जीवनमें लिखी नहीं जा सकतीं। यदि मेरे पास आठ सुबुद्ध पण्डित लिखनेवाले हों और मेरे संकेतके अनुसार लिखते चलें तब शायद कुछ ग्रन्थ तैयार हो सकते हैं। विद्यारण्य स्वामी आदिने इसी प्रकार इतने ग्रन्थोंका प्रणयन किया होगा।

पर आश्चर्यकी बात यह है कि महाराजके द्वारा इस रूपमें भी जो ग्रन्थ लिखे गये वे सम्पूर्ण ग्रन्थ अबतक प्रकाशित नहीं हो सके। महाराजद्वारा लिखित ऋग्वेद-भाष्य अभी भी अप्रकाशित ही है।

रामनवमीपर प्रतिवर्ष महाराज प्रायः अयोध्या पधारते थे। वहां सरयूतटपर स्थित लक्ष्मण-किलामें प्रायः महाराज ठहरते। भक्तिभावसे समन्वित रामनवमी-समारोहके कार्यक्रमोंमें भाग लेते। एक बार मैं भी महाराजश्रीके साथ अयोध्यामें था। छोटी छावनीके महंत श्रीनृत्यगोपालदासजी महाराज स्वामीजीके पास पधारे और अपने स्थानपर पधारनेके लिये निवेदन किया। महाराजने स्वीकृति दे दी और दूसरे दिन सायंकाल वहाँ पधारे भी। मैं भी साथ था। स्थानपर अयोध्याके प्रायः सभी उच्चकोटिके संत महात्मा एवं महंत उपस्थित थे। महाराजश्रीसे कुछ आशीर्वचन प्रदान करनेका निवेदन किया गया। महाराजश्रीने प्रभुके रूप-लीला-गुण और धामपर एक अत्यन्त सारगर्भित प्रवचन लगभग ४५ मिनटतक किया। कभी-कभी उत्कृष्ट श्रोताओंके बीच प्रवचन भी उतना ही उत्कृष्ट हो जाता है। महाराजश्रीके वचनोंको सुनकर कभी-कभी यह अहसास होने लगता था कि ये अद्भुत बातें ग्रन्थोंमें भी प्राप्त नहीं हैं। पर दुर्भाग्यकी बात यह थी कि उन प्रवचनोंके कैसेट भी तैयार नहीं किये गये। यह बात किसीके ध्यानमें नहीं आयी। इस कार्यक्रममें महंत श्रीनृत्यगोपालदासजीने महाराजसे यह अनुरोध किया कि महाराज! वाल्मीकि रामायणमें कई शंकाएँ और प्रश्न उठते हैं। उन सबका समाधान आपके द्वारा पुस्तकरूपमें

कर दिया जाय तो बड़ा लाभ होगा। स्वामीजी महाराजने उत्तर दिया कि रामायण-मीमांसामें हमने प्रायः सभी बातें लिख दीं। वहांसे लौटनेके अनन्तर एक दिन वाराणसीमें मैंने महाराजश्रीसे प्रार्थना की कि वाल्मीकिरामायणके प्रश्नोंका उत्तर लिखनेके लिये श्रीनृत्यगोपालदासजीने अनुरोध किया था तो इसे क्यों नहीं लिख दिया जाय? स्वामीजीने उत्तर दिया—रामायण मीमांसामें तो प्रायः सभी बातें आ ही गयी हैं। तब मैंने कहा—महाराज-जी, वाल्मीकिरामायणसे सम्बन्धित एक अलग पुस्तक बन जाय तब भी क्या आपत्ति। महाराजने इसे स्वीकार करते हुए कहा कि ठीक है। नृत्यगोपालदासजीको एक पत्र लिख दो कि वे पूर्वपक्ष लिखकर भेज दें। मैंने फिर कहा—इसकी क्या आवश्यकता है? पूर्वपक्ष तो आपको भी सब मालूम ही होगा। तब महाराजने कहा कि ऐसा नहीं होगा। पूर्वपक्ष भी हम ही करें और उत्तर भी हम ही लिखें, यह उचित नहीं है। तुम उन्हें पत्र लिख दो, वे सुबुद्ध हैं, पूर्वपक्ष भेज देंगे। मैंने अयोध्या उनके पास पत्र तो लिखा, पर संयोगवश उनका उत्तर प्राप्त नहीं हुआ और कुछ ही दिन बाद महाराज अस्वस्थ हो गये।

महाराजश्रीकी आस्था गोस्वामी तुलसीदासजीद्वारा रचित श्रीरामचरितमानससे जुड़ी थी। मैंने एक दिन अनुरोध किया कि महाराज! श्रीरामचरितमानसपर भी आपके द्वारा एक व्याख्या लिख दी जाय तो बड़ा अच्छा रहेगा। स्वामीजीने कहा कि इसपर कई व्याख्याएँ लिखी जा चुकी हैं। तब मैंने कहा—महाराज, आपके द्वारा इसकी व्याख्या हो जाय तो बड़ा लाभ होगा। तत्काल तो महाराजने उत्तर नहीं दिया, परंतु कुछ ही समय बाद महाराजने मुझसे कहा कि तुम रामचरितमानसपर व्याख्या लिखने-को कहते थे, सो लेखन-कार्यके लिये किसी व्यक्तिको ठीक करो, जो मेरे बोलनेपर लिख लिया करे। महाराजश्री वेद-भाष्य तो स्वयं लिखते और विश्रामकालमें रामचरितमानसकी व्याख्या बोलकर किसी अन्यसे लिखवाते। महाराजने मुझसे कहा कि पहले मैं अयोध्याकाण्डपर लिखवा रहा हूँ, इसके बाद बालकाण्ड प्रारम्भ करूँगा। पर कुछ ही समय

बाद महाराज-के अस्वस्थ हो जानेके कारण यह कार्य अधूरा रह गया और जितना लिखा गया वह भी महाराजश्रीके ब्रह्मीभूत होनेके बाद उपलब्ध नहीं हुआ।

महाराजश्री लगभग ७४ वर्षकी आयुमें ब्रह्मलीन हो गये। मुझे ऐसा लगता है कि कम-से-कम यदि १० वर्ष महाराजजीका जीवन और रहता तो भारतीय संस्कृतिको आलोकित करनेवाले कई ग्रन्थ महाराजश्रीके द्वारा प्रणीत मार्गदर्शनके रूपमें प्राप्त हो जाते, पर विधिका विधान तो कोई नहीं जानता।

महाराजश्रीकी अलौकिक प्रतिभाका दिग्दर्शन एक बार उस समय हुआ जब वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालयमें दर्शन-विषयपर एक व्याख्यान-माला महाराजश्रीद्वारा पन्द्रह दिनोंतक चली। यह व्याख्यान सायंकाल प्रतिदिन दो घंटे विश्वविद्यालय-परिसरमें होता था। काशीकी विद्वन्मण्डली और पण्डितगण इसे सुननेके लिये दूर-दूरसे पधारते थे। मैं भी प्रायः जाता था। महाराजश्री लगभग डेढ़ घंटे दर्शनपर बोलते थे। अन्तमें लगभग आधे घंटे श्रीकृष्णपर उस दर्शनको घटाते हुए उनकी मधुर लीलाओंका दिग्दर्शन भी कराते। मैंने महाराजश्रीसे पूछा भगवान् श्रीकृष्णपर आप क्यों बोलते हैं? तब महाराजश्रीने उत्तर दिया कि इसलिये बोलता हूँ कि तुम लोग चले न जाओ। कहीं व्याख्यान-कक्ष खाली न हो जाय। पंद्रह दिनोंमें महाराजजीने सम्पूर्ण आस्तिक और नास्तिक-दर्शनोंपर व्याख्यान दिया। एक दिन वे उस दर्शनका समारोहपूर्वक प्रतिपादन करते और दूसरे दिन उतनी ही दृढ़ता-प्रबलताके साथ आवश्यकतानुसार उसका खण्डन और उसकी समीक्षा भी करते। महाराजश्रीकी विलक्षण प्रतिभाको देखकर विद्वद्गण अत्यन्त विस्मित थे। वे परस्पर वार्ता करते कि हम सबने जीवनभर पढ़ा और पढ़ाया, परंतु स्वामीजीके समक्ष लगता है जैसे सब कुछ भूल जाते हैं। यह विद्या तो इस जन्मकी नहीं, किसी पूर्व जन्मकी तपस्याकी विद्या है। उन दिनों महाराज वृन्दावन विहारी-भवनमें निवास करते थे। मैंने तो यह भी देखा कि वे व्याख्यानके पूर्व कोई ग्रन्थावलोकन

भी नहीं करते। मैं भी आश्चर्यचकित था कि रामायण, भागवत और महाभारतकी कथा तो प्रायः निरंतर करनेका अवसर मिलता है, परंतु द्वैताद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, अद्वैत तथा बौद्ध, जैन एवं चार्वाक तथा न्याय-वैशेषिक आदि दर्शनोंपर बिना कोई ग्रन्थ देखे इस प्रकारका सारगर्भित व्याख्यान किसी अलौकिकताका ही द्योतक है। व्याख्यान-मालाके अन्तिम दिन महाराजश्री अपने व्याख्यानका उपसंहार कर रहे थे। उनकी शब्दावली स्वभावतः कुछ क्लिष्ट हो गयी थी उसी समय आचार्य बद्रीनाथ शुक्लने, जो उन दिनों न्याय-विभागके अध्यक्ष थे, महाराजश्रीको धीरेसे संकेत किया कि महाराज, व्याख्यान कुछ सरल किया जाय। यह सुनकर महाराजश्री कुछ मुसकराये, फिर उन्होंने व्याख्यानको कुछ सरल करनेका प्रयास भी किया। व्याख्यानके अन्तमें विद्वन्मण्डली इतनी भाव-विह्वल थी कि वहाँ महाराजश्रीका षोडशोपचार-पूजनकर वेद भगवान्की आरती उतारी गयी। विश्वविद्यालयके तत्कालीन उपकुलपति डॉ० गौरीनाथ शास्त्रीजी तो उस आरतीके शंख और वाद्य-ध्वनिके साथ बंगाली परम्पराके अनुसार नृत्य करने लगे। वहाँ एक विचित्र समाँ बँध गयी और वह एक अद्भुत दृश्य था।

महाराजश्रीकी आस्था साधन-भजनमें बहुत थी। एक बार गोरक्षा-आन्दोलनके समय एक मौनी बाबा महाराजश्रीसे आकर मिले। मैं भी वहाँपर था। उन्होंने कहा—मैं गो-हत्या-बंदीके हेतु अनिश्चितकालके लिये उपवास (अनशन) करूँगा। उन दिनों वे मानस-मन्दिरमें ठहरे थे। महाराजने कहा कि उपवासके साथ-साथ भगवान्का भजन भी अवश्य करना। भजनके बिना केवल उपवास सार्थक नहीं है। एक बार जब अस्वस्थताकी अवस्थामें वृन्दावन विहारी-भवनमें थे तो एक भक्तने महाराजश्रीको एक कीर्तन सुनाया—

हे आशुतोष जगदीश हरे, जय पार्वतिनाथ दयालु हरे।
गोविन्द हरे गोपाल हरे, श्रीकृष्ण द्वारकानाथ हरे॥

—यह कीर्तन महाराजको अत्यन्त प्रिय लगा और वे निरन्तर इस कीर्तनको करते और स्वयं भी सुनते।

एक बात बड़ी विलक्षण थी। महाराजजीके भक्तोंको यह मालूम नहीं था कि सगुण साकार-रूपमें महाराजके इष्ट कौन हैं? प्रायः सब लोग अनुमानके आधारपर ही विभिन्न कल्पनाएँ करते। महाराजकी मुख्य उपासना तो 'श्रीविद्या' की थी ही। उत्तर भारतमें 'श्रीविद्या' की उपासनाका प्रचार-प्रसार महाराजश्रीके द्वारा ही सम्पन्न हुआ। इस संदर्भमें महाराजने उपासनाके लिये 'श्रीविद्यारत्नाकर' पुस्तकका भी प्रणयन किया तथा अधिकारीजनोंको 'श्रीविद्या' की उपासनामें दीक्षित भी किया। राजराजेश्वरी भगवती त्रिपुरसुन्दरीका सहस्रार्चन और राजोपचार-पूजन महाराजजीके द्वारा कभी-कभी बड़े समारोहके साथ होता। कुछ भक्तजनोंका यह अनुमान था कि महाराजकी आराध्या षोडशी पराम्बा भगवती त्रिपुरसुन्दरी हैं। जब महाराज श्रीमद्भागवतमें 'रासपञ्चाध्यायी' पर व्याख्यान करते और राधाकृष्णके अलौकिक प्रेम तथा गोपियोंकी भक्ति-भावनाका वर्णन करते तो कुछ भक्तोंके मनमें यह बात आती कि महाराजके इष्ट मदनमोहन श्यामसुन्दर भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराघवेन्द्रका गुणगान तथा प्रभुके विवाहोत्सवमें मिथिलाकी गालियाँ अयोध्याके लक्ष्मणकिलाधीश श्रीसीतारामशरणजीके द्वारा बड़े चावसे महाराज जब सुनते, तब ऐसा लगता कि महाराजके इष्ट श्रीसीतारामजी ही हैं। महाराज जब अपने प्रवचनमें सदाशिव भूतभावन भगवान् विश्वनाथकी महिमाका वर्णन करते तो भक्तोंमें यह धारणा होती कि सदाशिव विश्वेश्वर ही महाराजश्रीके इष्ट हैं। वैसे महाराजने वार्ताके किसी प्रसंगमें मुझसे यह कहा था कि मेरे बचपनके संस्कार श्रीसीतारामजीके ही हैं। पर मैं महाराजके इष्टके संबन्धमें कोई पक्की धारणा नहीं बना सका था। एक बार जब अन्तिम दिनों अपनी अस्वस्थावस्थामें कुछ समयके लिये वृन्दावन विहारी-भवनमें निवास कर रहे थे तो उनकी सेवामें श्रीहनुमानप्रसादजी धानुका और उनकी पत्नी भी वहाँ उपस्थित थे। उन दिनों महाराजकी

परमहंसी अवस्था थी। बच्चों-जैसा सरल स्वभाव था। धानुकाजीकी पत्नीने महाराजश्रीसे आग्रहपूर्वक पूछा कि महाराज, आपके इष्टदेव कौन हैं? यह आजतक हमलोगोंको मालूम नहीं हो सका। आज आपको यह बताना होगा। महाराजने पहले तो डाँटा और कहा इससे तुम्हें क्या मतलब है। पर विशेष आग्रह करनेपर महाराजके श्रीमुखसे यह बात निकली कि देखो—भगवान् श्रीराजाराम मेरे चारों ओर उपस्थित हैं—यही मेरे इष्टदेव हैं। तुम सब लोग इन्हें प्रणाम करो।

महाराजश्रीका जीवन कर्म, ज्ञान और भक्तिकी त्रिवेणीका एक संगम था। वे लोकसंग्रहकी दृष्टिसे सत्कर्म और धार्मिक कृत्योंको स्वयं करनेमें अग्रगण्य थे तथा दूसरोंको भी इसके लिये प्रेरित करते थे। अग्निहोत्रादि कर्मोंका लोप न हो, इस दृष्टिसे उन्होंने पं० श्रीजोषणरामजी पाण्डेय, जो पहले धर्मसंघ-शिक्षामण्डलमें प्राध्यापक भी थे—उन्हें प्रेरित कर आहिताग्नि बनाया। उन्होंने और भी कई लोगोंको इसके लिये प्रेरित किया। उपासनाके क्षेत्रमें वे अलौकिक थे। भक्तिभावसे युक्त उनकी उपासना प्रगाढ़ थी। वे भगवान्‌की भक्तिको सर्वोपरि महत्त्व प्रदान करते। ज्ञान तो महाराजश्री-का विलक्षण था ही, उनकी अलौकिक प्रतिभाका साक्षात्कार जिन लोगोंको हुआ, उन्हें उनमें पुनर्जन्मके सिद्धान्तकी आस्था सुदृढ़ हुई। कारण, विद्वानोंकी यह धारणा थी कि महाराजश्रीकी यह विद्या पूर्वजन्मकी तपस्याके बिना प्राप्त नहीं हो सकती है और पूर्वजन्मका अस्तित्व स्वीकार होनेपर हिन्दूधर्ममें अवस्थित पुनर्जन्मका सिद्धान्त स्वतः सिद्ध हो जाता है।

इस प्रकार महाराजश्रीका जीवन भारतीय संस्कृति और सनातनधर्मका एक आदर्श दृष्टान्त था। उनके जीवनकालमें एक क्षणके लिये भी जिन्हें महाराजश्रीका सांनिध्य प्राप्त हुआ, वे परम सौभाग्यशाली हैं। भगवान् श्रीशंकराचार्यके शब्दोंमें—

दुर्लभं त्रयमेवैतद् देवानुग्रहहेतुकम्।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः॥

संसारमें तीन बातें अत्यन्त दुर्लभ हैं—१. मनुष्य-जीवन प्राप्त करना (चौरासी लाख योनियोंको भोगकर मानव-योनिमें जन्म लेना), २. मुमुक्षा अर्थात् इसी जन्ममें जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त होनेकी सुदृढ़ इच्छा (इसी जीवनमें परमात्मप्रभुको प्राप्त करनेकी दृढ़ भावना) और ३. महापुरुषकी संनिधि (जीवनमें किसी महापुरुषका सांनिध्य अथवा सत्संगकी प्राप्ति)।

उपर्युक्त तीनों बातें जीवके कल्याणके सोपान हैं। महाराजश्रीकी संनिधि जिन्हें प्राप्त हुई, उन्हें यह सौभाग्य सुलभ हुआ।

✣

स्वामी करपात्रीजी द्वारा संस्थापित विश्वनाथ घाट (मीरघाट) स्थित श्री काशी विश्वनाथ व्यक्तिगत मन्दिर में महाशिवरात्रिपर्व पर वैदिक विद्वानों द्वारा श्री विश्वनाथ जी के रुद्राभिषेक की मनोरम झाँकी

श्रीसीताराम सेवा ट्रस्ट, वाराणसी